योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

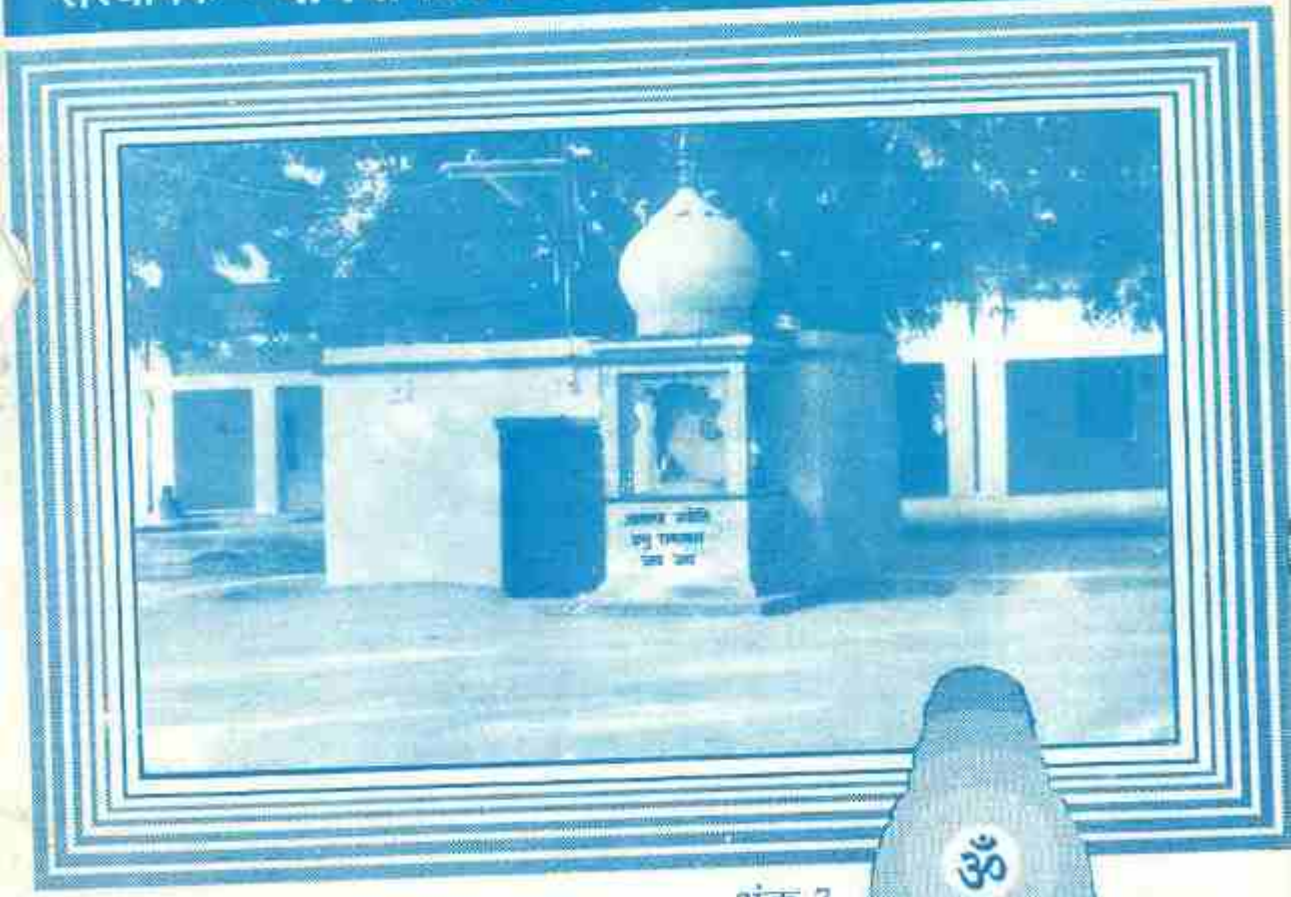

वर्ष 32 अक्टूबर, 1999 अंक 7

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु० 8-00
वार्षिक शुल्क	रु० 75-00
द्विवार्षिक	रु० 140-00
आजीवन	रु० 750-00

इस अंक में

- एकः योनिस्वभावान् अधितिष्ठति... 1
- अमृतकण..... 2
- विशेष लेख
  अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज.... 3
- सम्पादकीय..... 8
- गुरोराज्ञानुलंघनीया
  केशव देव उपाध्याय..... 12
- श्री महाप्रभु जी की अहैतुकी कृपा
  डा० स्वामी केशवाचार्य..... 15
- श्री अष्टावक्र–जनक प्रसंग
  अंशुमान देव मालवीय..... 16
- विनय श्रीचरणों में
  सूर्यकान्त पाण्डेय..... 19
- नाद साधना
  आचार्य चन्द्रहास शर्मा..... 21
- अद्भुत कृपा लीला
  राजेश कुमार श्रीवास्तव..... 33
- शरीर-क्षेत्र
  पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबा का उपदेश.... 37
- सेवा-पूजा..... 40

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 32
अंक 7

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवत् महतां सिद्धये सिद्धयोगः॥

अक्टूबर
1999

एकः योनिस्वभावान् अधितिष्ठति

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्
प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्।
एवं स देवो भगवान वरेण्यो
योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद ५/४)

अर्थात्

जिस प्रकार सूर्य अकेला ही समस्त दिशाओं को ऊपर–नीचे और इधर–उधर सब ओर से प्रकाशित करता हुआ दैदीप्यमान होता है, उसी प्रकार वह भगवान स्वामी बनने के योग्य सर्वश्रेष्ठ परमदेव परमेश्वर अकेला ही समस्त कारणस्वरूप अपनी समस्त शक्तियों पर आधिपत्य करता है।

अमृत कण

विवेक चूडामणि से

सदिदं परमाद्वैतं स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात्।
न ह्यन्यदास्ति किञ्चित्सम्यक्परमार्थतत्त्वबोधे हि॥ २२८॥

यह परम अद्वैत ही एक सत्य पदार्थ है, क्योंकि इस स्वात्मा से अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। इस परमार्थ–तत्व का पूर्ण बोध हो जाने पर और कुछ भी नहीं रहता।

❊ ❊ ❊

यदिदं सकलं विश्वं नानारूपं प्रतीतमज्ञानात्।
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावना दोषम्॥ २२९॥

यह सम्पूर्ण विश्व जो अज्ञान से नाना प्रकार का प्रतीत हो रहा है, समस्त भावनाओं के दोष से रहित अर्थात् निर्विकल्प ब्रह्म ही है।

❊ ❊ ❊

मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्नः
कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात्।
न कुम्भरूपं पृथास्ति कुम्भः
कुतो मृषा कल्पितनाम मात्रः॥ २३०॥

मिट्टी का कार्य होने पर भी घड़ा उससे पृथक नहीं होता क्योंकि सब ओर से मृत्तिकारूप होने के कारण घड़े का रूप मृत्तिका से पृथक नहीं है, अतः मिट्टी में मिथ्या ही कल्पित नाममात्र घड़े की सत्ता ही कहाँ है?

❊ ❊ ❊

केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं
घटस्य संदर्शयितुं न शक्यते।
अतो घटः कल्पित एव मोहान्
मृदेव सत्यं परमार्थभूतम्॥ २३१॥

मिट्टी से अलग घड़े का रूप कोई भी नहीं दिखा सकता। इसलिए घड़ा तो मोह से ही कल्पित है; वास्तव में सत्य तो तत्वस्वरूपा मृत्तिका ही है।

❊ ❊ ❊

विशेष लेख

सिद्ध कृपा से ही आत्मोत्थान

• योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें पहले भी अपने व्याख्यानों में समझाया है कि जिन जिन लोगों ने मुक्ति को प्राप्त किया है, वे जीवन में जप–तप आदि विविध साधनायें करते रहे और अन्त में सिद्ध कृपा एवं शक्तिपात के भाजन बन गये और उन्होंने अपने चरम लक्ष्य को पा लिया। योग का चरम लक्ष्य यह है कि साधक सम्प्रज्ञात योग की श्रेणियों को तय करता हुआ, असम्प्रज्ञात समाधि में हृदय ग्रन्थि विभेदन के बाद, अपने शुद्ध स्वरुप को प्राप्त हो जाये। साधक, चाहे जप करे, तप करे या कोई अन्य साधन कर ले, वह इतना पुण्य उपार्जित कर ले जिससे वह कृपा का अधिकारी बन जाये।

मनुष्य कृपा कृपा कहते रहते हैं। किन्तु हरेक मनुष्य कृपा का अधिकारी हो नहीं पाता। जो हृदय कृपा के अधिकारी बन जाते है, उनकी ओर स्वाभाविक आकर्षण हुआ करता है। वह कृपा स्वाभाविक हो जाती है और उनका उत्कर्ष हो जाता है। इसका कारण यह है कि वह विभिन्न साधनाओं व अनुष्ठानों को करता हुआ इतना पुण्य उपार्जन कर लेता है कि कृपा स्वयं प्राप्त हो जाती है। क्योंकि, उनकी साधना निष्काम होती है, अपने प्रियतम प्रभु को प्राप्त करना ही उनका लक्ष्य रहता है। उनकी निष्काम साधना उस परम पुरुष ओंकार को अपनी ओर आकृष्ट करती है, जिससे उनको समाधि लाभ होता ही होता है। जिसका विपुल पुण्य एकत्रित होता है उसकी श्रद्धा में कभी विक्षेप पैदा होता ही नहीं।

मैंने अपने व्याख्यानों में इस बात का भी कई बार जिक्र किया है कि ईश्वर प्रणिधान समाधि प्राप्ति के उपायों में से एक है– **'समाधि सिद्धीश्वर प्रणिधानात्'** अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से, अथवा भक्ति विशेष से अभिमुख किया हुआ ईश्वर, भक्ति विशेष से आकृष्ट किया हुआ ईश्वर, सामने लाया हुआ ईश्वर उस पर कृपा करता है और उसको अभीष्ठ वस्तु समाधि लाभ उसे प्रदान कर देता है। **'परानुरक्ति ईश्वरे भक्ति'** अर्थात् ईश्वर में परम अनुराग ही 'भक्ति' कहलाती है।

'यमैवेष वृणुते तनैव लभ्यः' का भी यही अर्थ है कि ईश्वर जिसको वरण कर लेता है, परम सिद्ध परम गुरु वरण करते हैं उसके अन्दर जीवात्मा नहीं रहती वे ही रहते हैं वरण करने का मतलब है आत्मा उसके शरीर को मन्दिर बना लेती है। उसे आत्म तत्व की प्राप्ति हो जाती है। साधक की श्रद्धा में यदि विक्षेप पैदा नहीं हुआ और उसके हृदय का प्रेम और श्रद्धा उमड़ता चला जाता है, तो समझ लेना चाहिये कि उस कृपा का इतना बड़ा अधिष्ठान बन जाता है कि उस हृदय से दुनियाँ को प्रकाश मिलने लग जाता है। इस प्रकार की ताकत स्वाभाविक हो जाती है। इस प्रकार से शक्तिपात पूर्वार्जित पुण्य का ही फल है, जिसे भाग्यवान् जीव ही प्राप्त किया करते हैं।

पुर्वार्जित पुण्य के फलस्वरूप किसी महापुरुष के साथ हमारा संस्कारवश सम्बन्ध हुआ, तो उस संयोग काल के अन्दर, क्योंकि हमारा पुण्य है और उनके साथ हमारा संस्कार है, उनका मन हमारी ओर आकर्षित होगा ही होगा और उस आकर्षण काल के अन्दर जो कुछ उनसे करा लोगे, वह बहुत ही उत्कृष्ट है। एक सिद्धान्त की बात निश्चित समझ लो कि संस्कार का भुगतान भुगतान ही है। जितना जैसा–जैसा जिस के द्वारा जिस प्रकार से होना होता है, वे संस्कार उसी प्रकार से आकर मिल जाया करते हैं। तभी ये सब बातें हुआ करती हैं । नहीं तो, बिना संस्कार के हजारों व्यक्ति इतस्ततः घूमते रहते हैं संस्कार काल के बिना वे मिल नहीं सकते। संस्कार काल के बिना वे बोल नहीं सकते और एक दूसरे को देख भी नहीं सकते। इसके लिये श्री प्रभु जी के चरणों से सम्बन्धित एक उदाहरण देता हूँ।

एक बार श्री प्रभु जी हरिद्वार में मेले में घूम रहे थे– उस समय की ध्यान स्थितियाँ, कृपा का प्रवाह, जो उस समय प्रवाहित हुआ, बहुत विलक्षण था और उनके बच्चों के अन्दर उसकी लहर अब भी आती है और चलती रहती है। प्रवाह के अन्दर कोई कमी नहीं आई जहाँ पर पूर्वार्जित पुण्य के प्रभाव से जिनके मन में कोई विक्षेप पैदा नहीं हुआ– जिनके हृदय के अन्दर कोई विकृति पैदा नहीं हुई तो समझ लेना चाहिये कि वह शक्ति का प्रवाह व कृपा की धारायें अब भी उसी प्रकार से प्रवाहित हो रही है और उस प्रवाह का प्रभाव आसपास के सम्पर्क के लोगों पर पड़ता है और हजारों जीवों का कल्याण होता है।

श्री प्रभु जी गंगा किनारे से निकल रहे थे। हमारे गुरु भाई श्री मुलखराज जी महाराज उनके साथ थे। श्री प्रभु जी जब नैपाल से आये थे, तब कुछ इस प्रकार का प्रवाह चलता था कि संस्कारों का साक्षात्कार बनता रहता था। श्री प्रभु जी साधकों की श्रेणियाँ (ध्यान की) लगाया करते थे जिससे उनकी प्रवाह का परीक्षण हो जाता था कि वे क्या देख रहे हैं– क्या अनुभव कर रहे हैं। इसी क्रम में एक बार श्री मुलखराज जी महाराज ने ध्यान में देखना प्रारम्भ किया कि श्री प्रभु जी के चरणों के साथ किस–किस का संस्कार है। कौन–कौन प्राणी कहाँ–कहाँ से आने वाले हैं उनकी कैसी कैसी शक्लें होंगी और किस समय उनके आने का संयोग है? उन्होंने ध्यान में इस प्रकार की आकृतियाँ देखीं। उनके ध्यान में आया कि जिस आकृति में जिस समय में जिसका, जिस प्रकार से मेल मिलाप होना है तथा आजकल वे किस आकृति व अवस्था में हैं यह भी देख लिया– दोनों ही रूप अनुभव में आये। अर्थात् यह प्राणी इस समय इस शक्ल के अन्दर है और जिस समय संस्कार काल आयेगा उस समय इस शक्ल के अन्दर होगा, इतना बड़ा होगा इतना विद्वान होगा व इतनी योग्यता होगी, ये सब अनुभव में आया।

श्री प्रभु जी के साथ एक बार जब हर की पैड़ी से मुलखराज जी महाराज गुजर रहे थे, तो देखा कि गंगा जी में कुछ व्यक्ति स्नान कर रहे हैं। उनको देख कर जिस प्रकार से कोई व्यक्ति बहुत दिनों के बाद सामने आये और सामने आने पर दूसरा सोचता है कि इन्हें हमने कभी देखा था। इसकी शक्ल वही है किन्तु ठीक–ठीक याद नहीं आ रहा है। इसी प्रकार से श्री मुलखराज जी सोचने लगे कि ये व्यक्ति जो स्नान कर रहे हैं, ये देखे हुये मालूम पड़ रहे हैं। किन्तु कहाँ देखे हैं? कब देखे हैं यह याद नहीं आ रहा है। वस्तुतः ध्यान में ही उन्होंने इन लोगों को देखा था। वहाँ खड़े–खड़े ही उनका मन समाहित हो गया– चित्त एकाग्र हो गया और उनका संस्कार

देखा और अनुभव हुआ कि ये लोग सवाँई तथा आसपास के क्षेत्र के है और श्री प्रभु जी के संस्कारी बालक है। श्री मुलखराज जी ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की 'प्रभु जी! ये आपके बच्चे है और यहाँ स्नान कर रहे है, मेरी इच्छा है कि मैं इनसे बात करूँ।'

श्री प्रभु जी ने जवाब दिया— चलो—चलो यहाँ अभी कोई बात नहीं करनी है।

'गुरोराज्ञानुलंघनीया' गुरुदेव की आज्ञा मान लेनी चाहिये। यदि यह समझते हो कि ये मेरे गुरुदेव है और हमसे ज्यादा सोच समझ सकते है तो उनकी बात मान लेनी चाहिये। श्री मुलखराज जी महाराज श्री प्रभु जी की आज्ञा को पाकर पीछे—पीछे चल दिये। किन्तु मन में संशय बना ही रहा कि प्रभु जी ने इनसे मुझे क्यों बात नहीं करने दी। थोड़ी दूर आ जाने के बाद विनीत भाव से श्री प्रभु जी से पूछा— "प्रभु जी! आपके बच्चे थे किन्तु क्या कारण है आपने इनसे न बात की और न करने दी।" श्री प्रभु जी हँस पड़े और कहने लगे— बेटा! इनका संस्कार काल इस समय नहीं है। यदि तुम इनसे बातचीत करते भी तो ये तुमसे बोलते भी नहीं या तुम्हें फटकार देते! तुम्हारा अपमान होता। इससे क्या फायदा था। इनके संस्कार काल में अभी काफी देर है। जिसके द्वारा इन लोगों को हमारे पास पहुँचना है, वह खुद भी अभी हमारे पास आया नहीं है। ऐसा श्री प्रभु जी ने उन्हें समझा दिया! स्वयं श्री मुलखराज जी महाराज जिस समय श्री प्रभु जी के चरणों में आये, इसी प्रकार की बात थी। यह सन् १९१९ की बात है जब जनरल डायर ने जलियाँवाला बाग में गोलियाँ चलाई थीं। कांग्रेस का जुलूस निकल रहा था। मुलखराज जी महाराज उस जुलूस में जा रहे थे। श्री प्रभु जी भी कहीं दुकान के सामने विराजमान थे। उन्होंने श्री मुलखराज जी को देख लिया और संस्कार सम्बन्ध जान गये कि 'यह तो हमारा बालक है।' मन में भावना आई और पूछ लिया बेटा! तुम्हारा कहाँ जन्म हुआ है और कौन माता पिता है? किन्तु संस्कार काल अभी नहीं था। मुलखराज जी ने जवाब दिया कि "पहले मलमल के कपड़ों को आग लगाओ और खद्दर के कपड़े पहनों। मैं तुम जैसे कौमी गद्दारों से बात नहीं करता।' श्री प्रभु जी हँसते रहे। जब श्री प्रभु जी अपने स्थान पर आ गये तब भी हँसते रहे। श्री प्रभु जी के पास अमृतसर का एक ब्राह्मण रहता था, जिस का नाम राम रतन था वह श्री प्रभु जी से पूछने लगा! प्रभु जी ! क्या बात है आज आप बराबर हँस रहे हैं? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया— "आज हमने अपने एक जन्म जन्मान्तर के संस्कारी बच्चे को देख लिया है। हमारे पास उसके आने का संस्कार आठ वर्ष बाद का था। किन्तु अब हमने उसे देख लिया है तो अब वह आठ दिन में हमारे पास पहुँच जायेगा। राम रतन ने कहा— 'प्रभु जी अमृतसर का कौन सा बालक है, जिसे हम आप के पास न ला सके? आप आज्ञा दें तो मैं बुला लाऊँ ? श्री प्रभु जी ने कहा— ' योग का काम इस तरह बुलाना नहीं है। वह समय पर स्वयं आ जायेगा और तुम सबसे उसकी स्थिति ऊँची हो जायेगी। ठीक आठवें दिन मुलखराज जी महाराज अपनी जन्म पत्री लेकर श्री प्रभु जी के पास पहुँचे। उन्हें किसी ने बता दिया था कि वे बहुत बड़े ज्योतिषी हैं। जब वह श्री प्रभु जी के पास पहुँचे तो उन्हें पहचान गये और संकोच में पड़ गये। श्री प्रभु जी ने कहा— बेटा! जनम पत्री दिखाने लाये हो, लाओ हम देख लेते हैं। ' श्री प्रभु जी ने उसे देख कर कहना शुरू कर दिया कि इसमें लिखा है तुम आज से ही योगी हो जाओगे। तुम्हें भगवद् दर्शन होने लगेगा। भूतभविष्य के ज्ञाता हो जाओगे आदि—२। श्री मुलखराज

जी सोचने लगे। मैंने उस दिन इनको अनुचित कह दिया था, इसी से यह मेरी मजाक कर रहे हैं। वे कहने लगे—महाराज मुझे तो कुछ समझ में नहीं आया। श्री प्रभु जी ने पूछा "तुम सनातनी हो या आर्य समाजी? वे कहने लगे— मैं आर्य समाजी विचारों का हूँ।" श्री प्रभु जी कहने लगे तुम संध्या करके आये हो? उन्होंने उत्तर दिया— "हाँ महाराज, मैं संध्या करके आया हूँ।' श्री प्रभुजी ने कहा—" नहीं—नहीं तुम संध्या करके नहीं आये हो इसीलिये मेरी बातें तुम्हारी समझ में नहीं आ रही है। तुम यहाँ बरामदे में बैठकर संध्या कर लो। श्री मुलखराज जी संध्या के मंत्र बोलने लगे। मंत्र बोलते–बोलते ही उनके मन में एकाग्रता आ गई। अनुभव जारी हो गये। यही उनको पहली दीक्षा थी। वे प्रगाढ़ ध्यान की स्थिति में चले गये। श्री प्रभु जी उसे उसी अवस्था में छोड़कर काँगड़ा चले गये।

श्री मुल्खराज जी सुबह आठ से शाम के ५ बजे तक इसी अवस्था में पड़े रहे। शाम को ५ बजे उनका ध्यान खुल गया। श्री प्रभु जी के साथ सब संस्कार देख लिया था—उन्हें बहुत दुःख हुआ कि प्रभु जी उन्हें छोड़कर चले गये हैं। आठ दिन के बाद श्री प्रभु जी काँगड़ा से लौटे। तब से उनका श्री प्रभु जी के चरणों से विछोह नहीं हुआ बराबर उनके चरणों में बने रहे। उन्हें उनकी कृपा से तुरीय स्थिति प्राप्त थी।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य का संस्कार काल होता है। उस संस्कार काल के अन्दर यदि पूर्वार्जित पुण्य विशेष हो तो उस पुण्य के कारण किसी महापुरुष के मन के अन्दर उसने अपना प्रभाव पैदा कर लिया है संस्कार वह भुगतान का है, उस समय उनका मन भी उसके प्रति पूर्ण आह्लादित हो जायेगा। वे चाहेंगे कि इसको दे दिया जाये। इसका कुछ कर लिया जाये। इसके अन्दर सिद्धि शक्तियों का वास हो। इसे पूर्ण आत्म प्रकाश हो जाये। तब तक उनके मन में ये भावनायें बनी हुई है और संस्कार का उज्ज्वल समय व्यतीत हो रहा है—पूर्वार्जित पुण्य मद्दगार हो रहा है। यदि वह सुकर्मा जीव है, तो उसको अत्यंत विनीत हो जाना चाहिये और उनसे बड़ी से बड़ी ताकत प्राप्त करके अपने आप को निहाल और कृतार्थ कर लेना चाहिये।

मेरे कहने का अभिप्राय केवल मात्र एक है कि साधक का एक ही कार्य है कि वह गुरुदेव को अभिमुख कर ले। ईश्वर को अभिमुख कर ले। किसी प्रकार सामने ले आये। उसके अन्दर वह गुण हो, वह प्रेम हो जिससे वह अपने गुरुदेव को अपने ईश्वर को अपने सामने ला सके। इसके लिये आवश्यक है कि उसके मन में उनके प्रति हर वक्त चिन्तन बना रहे। ऐसा हो जाने पर उनकी शक्तियों का प्रकाश उसमें होने लगेगा। यदि अभिमुख नहीं हुये तो वाणी से हम कुछ भी कहते रहें उसका कोई खास परिणाम नहीं आयेगा। किन्तु हृदय में उनके चिन्तन से, प्रेम से वे अभिमुख हो जाते है महापुरुषों को अपनी ओर अभिमुख करना ही साधक का परम लक्ष्य है। इसके लिये वह किसी प्रकार का तप करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे या अन्य कोई व्रत करे उस परम पुरुष को अभिमुख कराकर उनकी शक्ति प्राप्त करें। हमारा हृदय उनके चरणों में स्वाभाविक ही आकर्षित हो जाये और आकर्षण बना रहे—'टूटे ना तार बनी रहे सदा' ऐसा तार जुड़ जाये जो कभी न टूटे। ऐसा हर वक्त का चिन्तन एवं आकर्षण उनकी शक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता रहेगा शक्ति भीतर ही भीतर बढ़ती चली जायेगी। वह प्रवाह इतना तेज हो जायेगा कि उसके ऊपर दूसरी शक्तियों का प्रभाव पड़ेगा ही नहीं। नैपाल हिमालय से आने के बाद श्री प्रभु जी ने अपने बालकों को अपनी ओर आकर्षित करना शुरू किया। चाहे उनका पुण्य थोड़ा ही हो, उन्हें परम

प्रकाश की ओर अग्रसर कर लिया। यह उनकी करुणा कृपा का ही फल है इन सब बातों के साथ–साथ साधक को एक और बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये। कि 'नातपस्विनो योगः सिद्धयति' जो तपस्वी नहीं है उसको योग सिद्ध नहीं होता।

शक्तिपात हो जाने पर भी साधक को अपनी साधना में शिथिलता नहीं आने देना चाहिये। ध्यान योग की अच्छी स्थिति प्राप्त हो जाने पर साधक को यह नहीं समझना चाहिये कि अब विशेष अभ्यास की आवश्यकता नहीं, प्रवाह चल रहा है चलता ही रहेगा साधक को अपनी नियमानुवर्तिता या दिनचर्या ऐसी बनानी चाहिये जिससे साधना में अन्तराय न आ पाये। अन्तराय चलते प्रवाह को रोक देता है। गुरुदेव चाहते है कि हमारे सब साधक बच्चे जिस उज्ज्वल तेज की ओर बढ़ रहे है उत्तरोत्तर बढ़ते रहें। गुरुदेव तो जिस समय किसी को ग्रहण करते है वह उसको पूर्ण रुपेण स्वीकार करते है।

शिष्य को गुरुदेव की आज्ञानुसार जाप व ध्यान तो करना ही चाहिये। उसमें साधकत्व के गुण भी आने चाहिये। जब तक साधकों जैसी अवस्था पैदा नहीं करता, तब तक अन्तराय रास्ते में आयेंगे ही। इसलिये राग–द्वेष, निन्दा–चुगली को पूर्णरूप से छोड़ दो। साधक को अत्यन्त विनीत व विनम्र रहना चाहिये। इसलिये याद रखो, घोर कलिकाल का समय है। ऐसे समय में श्री प्रभु जी के चरण कमल मिले है, पवित्र योग का मार्ग मिला है इस दुर्लभ संयोग को पाकर अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ में मत गवाओ। अरे ! किस अहंकार में घूम रहे हो कब काल चक्र आकर किस को खा जाये, इसका किसी को ज्ञान नहीं होता। देखो ! जहाँ पर अभिमान है वहाँ परमात्मा का वास नहीं, जहाँ पराई चर्चा और ईर्ष्या की बात है, वहाँ परमात्मा का वास नहीं, जो मनुष्य रात दिन झूठ बोलता है, वहाँ परमात्मा का वास बिल्कुल नहीं। इसलिये अपने अन्दर विनम्रता और निराभिमानिता लाओ। सब दुर्गुणों को छोड़कर साधना में लग जाओ। श्री प्रभु जी की चरण शरण मिली है अपने को निहाल और कृत–कृत्य कर लो। बस इस समय वाणी को यहीं विराम देता हूँ। बार–बार आशीर्वाद।

* * *

मानवी सत्ता विलक्षण है, अद्‌भुत है। उसमें जड़ जगत की विशेषताओं के साथ-साथ, वैश्व चेतना की विभूतियों का सार-तत्व संक्षिप्त किन्तु परिपूर्ण मात्रा में विद्यमान है। अर्न्तजगत में, आत्मसत्ता के कण-कण में सर्वाधिक आवश्यक एवं उपयोगी जीवन सम्पदा ओत-प्रोत है।

सद्गुरुदेव भगवान का प्राकट्य दिवस—विजय दशमी

आचार्य दासलाल ब्रह्मचारी

विजय दशमी का पावन पर्व जहाँ हिन्दू समाज के परमोल्लास का दिन है वहीं पर श्री सिद्ध गुफा से जुड़े लाखों योग साधकों के लिये भी यह बड़े महत्व एवं पुण्य का पर्व है। क्योंकि हमारे सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का इसी दिन पृथ्वी पर अवतरण हुआ था। इन्हीं करूणामयी मूर्ति ने अज्ञानान्धकार में भटकते हुये व सांसारिक दारूण दुःखों से संतप्त लाखों व्यक्तियों को योग ज्ञान दीप दिखाकर अपनी अहैतुकी कृपा से उन्हें दुःखों से त्राण दिया तथा अमरत्व की ओर अग्रसर किया है, सद्गुरु रूप में उनसे उन असंख्य व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से योग का आलोक मिला है, उनके तिरोहित होने पर भी उस रूप का चिन्तन, स्मरण करने वालों को सहायता तथा पथ—प्रदर्शन आज भी मिल रहा है और युगों—युगों तक मिलता रहेगा।

हमारे गुरुदेव जी जगत में सद्गुरु के रूप में आये। योगी के जीवन में सद्गुरु की कितनी अनिवार्य आवश्यकता है इस को युगों—युगों से साधकों एवं सन्तों ने समझा है। कबीर जैसे निर्गुणवादी भी सद्गुरु की महिमा गाते कभी अघाते नहीं। तभी तो वे कह उठते है—

कबीर ऐसा तो सद्गुरु मिला, जासो रहिया लाग।
सब जग तो शीतल भया, मिटी आपनी आग।।

जीवन में सद्गुरु मिल जाने पर सारा क्लेश नष्ट हो जाता है। सारी कामनाऐं पूर्ण हो जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु की तीक्ष्ण आतप से संतप्त भूमि को वर्षा संतृप्त कर देती है तद्वत सद्गुरु के मिलने पर जीव सब प्रकार से दुःख मुक्त होकर आनन्दित हो जाता है। सद्गुरु की शरण मिल जाने पर जो शिष्य उनकी आज्ञा को नहीं मानता है ऐसे शिष्य के लिये कबीर साहिब कहते हैं—

जो कामिनी परदा करे, सुने न गुरु मुख बात।
सो तो होगी शूकरी फिरे उघारे गात।

अर्थात् जिसकी बुद्धि (कामिनी) सद्गुरु की बात को सुनती नहीं वह तो शूकरी की तरह उघारे गात गंदी नालियों व विष्टा के ढेर में पड़ा रहता है।

पूर्ण सद्गुरु मिलने पर ही जीव को पूर्णत्व मिलता है। गुरु शिष्य का सम्बन्ध जगत में अलौकिक सम्बन्ध है। यह जीव—ब्रह्म का भौतिक व आत्मिक सम्बन्ध है। महाभारत के मैदान में अर्जुन कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय में भ्रमित हो गया तब उन्होंने **'शिष्येऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'** की आर्त पुकार की। मैं आपका शिष्य हूँ आपकी शरण में पड़ा हूँ इसलिये आप ही मुझे सही मार्ग का उपदेश दें। अर्जुन के इसी विनीत भाव ने उस परब्रह्म को योग के दिव्य ज्ञान को खोलकर गीता के रूप में प्रकट करने को विवश कर दिया। शरणागत को सब प्रकार से अभय देना सद्गुरु का कर्तव्य है और उनका स्वभाव भी ऐसा ही होता है।

गुरु—शिष्य के अन्दर की दैवी सम्पदा के बीज व संस्कार को पाकर उसके इस सम्पदा को निरन्तर बढ़ाने

में सहायक होता है। गुरु उसके भीतर छुपे समस्त श्रेष्ठ गुणों को माध्यम बनाकर उसे अपनी कृपा का भाजन बनाता है। वस्तुतः गुरु शिष्य को अपने जैसा बनाना चाहता है। गुरु में आकर्षण शक्ति होती है। वे शिष्य के गुणों को आकृष्ट कर उसकी श्रद्धा को निरन्तर प्रवाही बनाकर उसे तत्व ज्ञान का अधिकारी बना देते हैं। हमारे प्राणधन सद्गुरु देव अपने बच्चों के छोटे–छोटे गुणों पर प्रसन्न हो जाया करते थे और उसे भीतरी सम्पदा दे डालते थे। 'न जाने कौन से गुण पर दयालु रीझ जाते हैं' की उक्ति सद्गुरु चरणों में चरितार्थ हुआ करती थी।

संसार में सद्गुरु बाहर से तो मनुष्य की ही भांति दिखाई देते हैं और वैसे ही चेष्टायें वे किया करते हैं। इसलिये मनुष्य उनकी वास्तविकता को समझ नहीं सकते–आदि काल से ही ऐसा होता चला आता है। जब–जब भी भगवान अपनी दिव्य शक्तियों को लेकर संसार में अवतार लेते हैं तो उनकी उन दिव्य शक्तियों (शरीर) से सब का भला नहीं बन पाता है। भगवान कृष्ण पूर्ण ब्रह्म मनुष्य रूप में आये तो उस समय उनके अलौकिकता को समझने वाले इने गिने ही लोग थे। आनन्दकन्द योगेश्वर महाप्रभु रामलाल जी के समय में भी उनके कुटुम्बी जन व ब्राह्मण समाज भी उनके योगेश्वर्य को नहीं जान पाये प्रत्युत कुछ मूढ़ात्मा उनकी पूजा अर्चना होते देखकर ईर्ष्या करते और उन्हें अपमानित करने का भी प्रयत्न करते; किन्तु सफल कभी नहीं हुये। हमारे गुरुदेव जी को भी लोग समझ नहीं पाये थे उनके अपने गाँव में पाँच सात भक्तों को छोड़कर अन्य लोग उन्हें साधारण ब्राह्मण के रूप में ही जानते थे। गुरुदेव ने अपना जन सामान्य वेश बना रखा था। वस्तुतः गुरुदेव को समझने के लिये जीवन में पात्रता व पवित्रता की आवश्यकता होती है। भगवान कृष्ण ने माँ यशोदा को अपना मुख खोलकर विश्व रूप का दर्शन कराया था। गुरुदेव के पास रहकर भी उनकी विशालता एवं भीतरी शक्ति का परिचय सभी को नहीं मिल पाता है। श्रद्धा एवं पुण्य के प्रभाव से ही उनकी भीतरी शक्ति का अनुभव उनकी इच्छा से हो पाता है।

सिद्ध गुरु की दृष्टि अपने शिष्य पर जन्म–जन्म पर बनी रहती है। उसे कल्याण के मूल स्रोत तक पहुँचाने के लिये वे कृतसंकल्प होते हैं।

हमारे गुरुदेव जी अपनी साधना की पूर्णता के बाद जंगलों में जाने को तैयार होकर चल दिये थे। बाघम्बर आदि पहने ऋषिकेश आश्रम के मुख्य द्वार पर पहुँच जब वे आगे कदम बढ़ाने लगे उसी समय पोस्टमेन आनन्द कन्द प्रभु जी का पत्र गुरुदेव के हाथ में थमा देते हैं। गुरुदेव जी ने वहीं पत्र खोला और पढ़ा–उसमें लिखा था– 'चिरंजीव ! हम बस्तियों में बैठे हैं और तुम वनों में जा रहे हो। जो कदम तुमने आगे बढ़ाया है उसे पीछे कर लो। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। गुरूदेव भी कहा करते थे– यदि उस समय में जंगलों में चला जाता तो भतृहरि गोपीचन्द की तरह अजर–अमर होकर लाखों वर्ष इसी शरीर से रहता। श्री प्रभु जी की आज्ञा शिरोधार्य कर गुरुदेव ने वनों में जाने का विचार छोड़ दिया। श्री गुरुदेव के द्वारा लाखों व्यक्तियों का कल्याण होना था इसलिये ही उन्हें वनों में जाने से रोक लिया गया था। वस्तुतः श्री प्रभु जी के 'सिद्धयोग' की दिव्य परम्परा का प्रचार प्रसार गुरुदेव जी के द्वारा जिस प्रकार से हुआ इस संसार में श्री प्रभु जी के किसी दूसरे शिष्य के द्वारा नहीं हो पाया। योग

के अमर सन्देश को जन जन तक पहुँचाने के श्री प्रभु जी के लक्ष्य की पूर्ति के लिये गुरुदेव ने श्री सिद्ध गुफा को अपना कार्य स्थल बनाया। इसी पावन धराधाम से उन्होंने योग प्रचार का दिव्य शंखनाद किया। आज से ६०–६५ वर्ष पूर्व कौन सोच सकता था कि इस भयावह जंगल में स्थित गुफा आने वाले कुछ समय में संसार में योग ज्ञान का सिद्ध पीठ बनकर लाखों साधकों के लिये दिव्य शक्ति एवं प्रेरणा का महास्रोत बन जायेगा।

योग के इस गोमुख से आज असंख्य साधक 'सिद्धयोग' के परम पावन मार्ग का अधिकारी बनकर योग आलोक से जीवन को परिपूरित कर रहे हैं। महाप्रभु से प्रस्फुटित इस सिद्धयोग परम्परा की मुख्य विशेषता यह है कि अमृतविद्या गृहस्थ एवं विरक्त दोनों प्रकार के साधकों को समान रूप से प्राप्त होती है। जिस साधना को विरक्त योगी गिरिगुहा में रहकर करते हैं वही साधना अपने को अधिकारी बनाकर घर में रहकर ही एक ग्रही साधनारत रहता हुआ करता है। हमारे सद्गुरु की यही विशेषता है। कि उन्होंने इस अमृत विधा को किसी सम्प्रदाय में बँधकर नहीं बाँटा अपितु जो भी इसका अधिकारी है वह चाहे किसी भी आश्रम का हो समान रूप से उसे दिया है।

योग विद्या के अमर तत्व को प्रकाशित करने के लिये गुरुदेव ने पातञ्जल योग दर्शन एवं भगवद्गीता को मुख्य रूप से आधार बनाया है। योग विज्ञान की प्राप्ति के लिये उपनिषद् में आता है **'तद् विज्ञानार्थं समभिगच्छेत् समित्पाणि श्रोत्रीयं ब्रह्मनिष्ठम्'** योग तत्व को जानने के लिये साधक को हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाकर उस विधा को सीखना चाहिये। हमारे गुरुदेव श्रोत्रीय शास्त्रों के पूर्ण वेत्ता तथा ब्रह्मनिष्ठ योगयुक्त दोनों ही थे। योग के सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक पक्ष दोनों का ही महत्व गुरु देव ने अपने योगी शिष्यों को समझाया हैं। आपने हमेशा ही ध्यानयोग के क्रियात्मक पक्ष पर बल दिया है इसलिये आपके शिष्यों के मन में ध्यान योग की महिमा का सर्वोपरि स्थान है।

योग से मनुष्य सब प्रकार से धन्य व शक्ति सम्पन्न बनता है। यही सीख गुरुदेव ने दी है योगी ईश्वरीय प्रदत्त निज शक्तियों को जगाकर अज्ञान व बन्धन से छूट कर शिव रूप हो जाता है। यही गुरुदेव के उद्बोधन का सार है। ध्यानाभ्यास के द्वारा अपनी चित्त शक्ति का विकास कर साधक बड़े–बड़े कठिन कार्य सहज में ही कर लिया करता है। उन्होंने साधकों को यह समझाया है कि छोटी–मोटी कामनाओं की पूर्ति के लिये छोटे–मोटे देवी, देवता, यज्ञ भैरव आदि को पूज कर योगी अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करने में कल्याण नहीं मानता। भिक्षा से माँगा हुआ अन्न एक–दो दिन ही काम दे सकता है। फिर उसे माँगते ही रहना पड़ता है। संसार में देवी देवताओं की उपासना से योगी का काम सिद्ध नहीं हुआ करता है। गुरुदेव ने अपने शिष्यों को वह रहस्य और निरापद मार्ग बताया है, जिस पर चलकर योगी स्वयं संसार को देने वाला बन जाता है। यह सब योग विज्ञान से ही संभव है। योग ही मनुष्य को सब प्रकार से कृतकृत्य कर सकता है। यही अमर सन्देश गुरुदेव ने हम सब को दिया है।

सिद्ध योग परम्परा में गुरुदेव शिष्य की साधना के अभिन्न अंग होते हैं। **'गुरु कृपा हि केवलम'** का सिद्धान्त इसमें सर्वोपरि रहता है। भगवान सदाशिव ने सिद्धयोग परम्परा के साधकों के लिये **'गुरू: सम ततो नान्यत्**

साध्योऽसौ गुरुमार्गिणा' कहकर इस बात को स्पष्ट कह दिया है कि गुरुमार्गियों के लिये गुरू देव ही सर्वतो भावेन साध्य है। सिद्धि शक्ति मान होने पर भी हमारे गुरुदेव में अपने गुरुदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज के प्रति जो निष्ठा थी वह **'यावत कल्पान्तको देहस्तावद देवि गुरं स्मरेत्'** अर्थात् कल्पान्त जीवी भी यदि कोई हो जाये तब भी उसे गुरु का लोप (चित्त से) नहीं करना चाहिये, गुरु का स्मरण ही करना चाहिये— भगवान सदाशिव के भावों का अक्षरशः पालन था। सद्गुरु के प्रति शिष्य की श्रद्धा ही धीरे–धीरे बढ़कर उसे **'श्रद्धावान लभते ज्ञानम्'** की स्थिति पर ला देता है। शिष्य की श्रद्धाकली को अभिसिंचित कर सद्गुरु उसे महावृक्ष का रूप देते हैं।

गुरुदेव ने अपने शिष्यों को शास्त्र सम्मत ध्यान योग का वह राजमार्ग बताया है जो शास्त्र जाल एवं मत–मतान्तर, सम्प्रदाय के संकीर्ण एवं भ्रामक सीमाओं से सर्वथा विमुक्त अन्तस्थ ईश्वर को प्राप्त करने का एक मात्र साधन है। इसके साथ ही सद्गुरु तत्व की उपासना की प्रधानता को शिष्यों में कूट–कूट कर भर दिया है। भगवान सदाशिव ने गुरु गीता में कहा है—

यज्ञो दानं तपस्तीर्थं; व्रतं धर्मं परं च यत्।
गुरू तत्वमविज्ञाय मूढास्तेऽन्यपरा जनाः।।

अर्थात् मूढ़ लोग संसार में गुरु तत्व को न जानकर यज्ञ, दान, तप और तीर्थ, व्रत और धार्मिक कृत्यों में लगे रहते हैं। अपने गुरुदेव आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की पराभक्ति को ही महत्व देकर गुरु देव ने गुरु गीता के उपर्युक्त भावों को सार्थक किया है। गुरुदेव ने गुरुतत्व की उपासना एवं योग मार्ग के आश्रय को ही कल्याण का मूल साधन बताया है।

गुरूदेव का यौगिक उपदेश एवं साहित्य अजस्र धारा के रूप में प्रवाहित होकर आज जन जन को आप्लावित कर उन्हें पावन बना रहा है। योग साधक उनके जीवन एवं दर्शन से युगों युगों तक आत्म शक्ति एवं प्रेरणा लेता रहेगा। उन्होंने जीवन में कर्म और पुरुषार्थ को हमेशा महत्व दिया है जो सभी के लिये प्रेरणाप्रद संदेश है। आज उनके पावन प्राकट्य दिवस पर उनके पावन चरणों में उनको सहस्र बच्चों का कोटि–कोटि प्रणाम है। युग स्रष्टा उन महा योगेश्वर के उपकार को योगी समाज अनन्तकाल तक याद करता रहेगा। ❋ ❋ ❋

हमें सुख की अभिलाषा क्यों है ? तथा दुःख से निवृति क्यों नहीं होती है ? इन प्रश्नों को सुलझा लेना, इनके उत्तर प्राप्त कर लेना, इनका निराकरण कर लेना ही ज्ञान का ध्येय है।

गुरोराज्ञानुलंघनीया

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

सर्व समर्थ एवं सर्वज्ञ श्री सद्गुरुदेव भगवान की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन सिद्धयोग शिष्य एवं साधक के लिये क्यों आवश्यक है, इस तथ्य से हमारे आदरणीय वरिष्ठ गुरुभाई–बहन खूब अच्छी प्रकार अवगत हैं। श्री प्रभु जी के इस सिद्धयोग दरबार से जुड़ने वाले नवागन्तुक गुरूभाई–बहनों को यह रहस्य समझाने के लिये आराध्यदेव श्री सद्गुरु देव भगवान एवं योग योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरण कमलों में घटित कुछ प्रत्यक्ष घटनाओं को लिपिबद्ध किया गया है। जो निम्नवत है।

इस घटना को घटित हुए करीब बीस वर्ष हो रहे हैं। बात कुछ इस प्रकार बना कि आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज ने अपने कई ब्रह्मचारियों के साथ आगरा से योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा संवाई आश्रम के लिए प्रस्थान किया। उनकी यात्रा का साधन कार थी। उस समय एत्मादपुर से बरहन जाने वाली सड़क आजकल की तरह डामर रोड नहीं थी। थोड़ा–थोड़ा कंकड पड़ा था एवं मुख्य रूप से यह सड़क कच्ची ही थी। यह कार ने जिस पर श्री प्रभु जी के साथ हमारे भाई श्री ज्ञानी बाबा जी भी विराजमान थे, बरहन वाली सड़क से उतरकर। ज्यों ही आश्रम में प्रवेश करना आरंभ किया, कि कीचड़ एवं दलदल में फँस गयी। गाड़ी के ड्राइवर ने प्रयत्न किया कि गाड़ी को निकाल ले परन्तु गाड़ी निकलने के बजाय नीचे दबती ही गयी। जब ड्राइवर ने देखा कि बिना धक्का दिये कार निकलने वाली नहीं है। तो उसने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि महाराज जी। आप उतर कर अपनी कोठरी में चलें, हम धक्का लगवाकर गाड़ी निकाल कर आ रहे हैं। उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर श्री प्रभु जी गाड़ी से नीचे उतर गये। सभी ब्रह्मचारी भी कार से नीचे उतर गये। श्री प्रभु जी तो उतर कर अपनी कोठरी में चले गये परन्तु ड्राइवर के निवेदन पर सभी ब्रह्मचारी गण ने कार को धक्का लगाना आरम्भ किया। वहाँ उपस्थित सभी ब्रह्मचारी पूरे परिश्रम एवं लगन से कार को धक्का देकर निकालना चाहते थे। एवं गाड़ी का ड्राइवर भी सभी गेयर बदलकर गाड़ी निकालने का प्रयत्न कर रहा था। कार के दो पहिये कीचड़ में फँस गये थे। अतः ब्रह्मचारी गण तथा ड्राइवर द्वारा कार को निकालने का जितना ही प्रयत्न किया गया वह उतनी ही बुरी तरह से फँसती गयी। कार के पहिये का आधे से ज्यादा भाग कीचड़ में दब गया था एवं वहाँ उपस्थित सभी लोग पसीने से तरबतर थे। इस प्रकार करीब आधे घण्टे का समय व्यतीत हो गया। ड्राइवर चूँकि आध्यात्मिक वृत्ति का प्राणी था अतः उसने ज्ञानी बाबा से निवेदन किया कि बाबा जी, मेरी तरफ से महाराज जी से प्रार्थना करने की कृपा करें कि मेरी कार तो निकल जाय। अब धक्का देकर गाड़ी का निकाला जाना असंभव सा ही था, अतः सभी लोग कार से कुछ अलग हटकर आराम कर रहे थे।

श्री ज्ञानी बाबा उस स्थान से चलकर श्री प्रभु जी के पास पहुँचे एवं प्रार्थना की कि प्रभु जी! गाड़ी अब तक नहीं निकली। प्रभु जी ने कहा कि लल्ला! जाकर धक्का लगा दो। ज्ञानी बाबा ने निवेदन किया कि प्रभु जी धक्का तो हम सभी ने आधे घण्टे से ज्यादा लगाया परन्तु ज्यों–ज्यों हम धक्का लगाते हैं, कार निकलने के बजाय धँसती जा रही है। प्रभो! अब बतलाइये कि हम लोग क्या करें ? ज्ञानी बाबा की बातों को अनभिज्ञ पुरुष की तरह सावधान मन से सुनने के बाद प्रभु जी ने ज्ञानी बाबा को देखकर अपनी ओजस्वी गम्भीर वाणी में आदेश

दिया—"अरे भले मानुष! एक बार जरा फिर कार को छूकर तो देख।" ज्ञानी बाबा की समझ में अब भी यह रहस्य नहीं आ रहा था एवं वे सोच रहे थे कि हमारे धक्का देने से होगा ही क्या, परन्तु उन्होंने तय किया कि जब गुरूदेव भगवान की आज्ञा है तो चलकर हम धक्का तो लगा ही दें। अतः ज्ञानी बाबा कार के पास गये, उन्होंने ड्राइवर से कहा कि मैं धक्का दे रहा हूँ, अब गाड़ी चालू करके निकाल लीजिये। ड्राइवर ने निवेदन किया कि और लोगों को बुला लीजिये, ज्ञानी बाबा ने कहा कि सभी लोग धके हुए हैं मैं ढकेल रहा हूँ, आप गाड़ी निकालें। ड्राइवर ने कार स्टॉर्ट की एवं ज्ञानी बाबा ने उसे धक्का देने की नीयत से ज्यों ही स्पर्श किया कार चलकर कीचड़ से बाहर आ गयी। कार के कीचड़ से निकलने के बाद ज्ञानी बाबा को श्रीवाणी का रहस्य समझ में आया एवं उन्होंने दौड़ते हुए जाकर श्री प्रभु जी के अभय चरणों में प्रणाम किया। उनके पीछे–पीछे उस कार के ड्राइवर के प्रणाम करने के बाद श्री प्रभु जी ने प्रश्न किया, क्यों लल्ला ! गाड़ी तो निकल गयी। उसने कहा कि महाराज, गाड़ी तो निकल गयी परंतु आप की माया आप ही जाने। जब करीब पाँच छः आदमी कार को धक्का दे रहे थे तब गाड़ी निकलने के बजाय जमीन में धसती जा रही थी। जब ज्ञानी बाबा आप के यहाँ से गये तो इन्होंने हमसे गाड़ी चलाने को कहा एवं स्वयं मामूली ताकत से धक्का दिया और गाड़ी निकल गयी। यह रहा अपने आराध्यदेव श्री सद्गुरू देव जी महाराज की आज्ञा पालन का प्रभाव। इस प्रकार की घटनाएं श्री प्रभु जी के प्रिय बच्चों के साथ घटित होती ही रहती है।

स्वर्गाश्रम में निवास कर, अपने शिष्यों को आध्यात्मिक साधना कराने वाले दण्डी स्वामियों के महंत की जानलेवा भयंकर उदर पीड़ा को अपने एक अनाड़ी एवं मूर्ख से दिखने वाले शिष्य सरदार श्री टहलसिंह द्वारा ठीक करा देना, परम तपस्विनी एवं योग मूर्ति परम आदरणीय सुश्री द्रोपदी माता के पैर के घाव को एक आठ दस वर्षीय छोटे बालक से उपचार द्वारा ठीक करा देना या ठीक हो जाना, केवल मात्र गुरूदेव की आज्ञा पालन के ही उदाहरण है। वैसे जब श्री गुरूदेव आज्ञा देते हैं किसी कार्य को करने के लिए, तो साधारणतया ऐसा लगता है कि आज्ञा पालन करने में लाभ नहीं है परन्तु इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं कि आज्ञा पालन करने से ही शिष्य निहाल हुए हैं। इस समय अपने इस आश्रम में घटित एक घटना याद आ रही है। जिसका उल्लेख करना मेरी समझ से उचित प्रतीत होता है। 'सर्व समर्थ गुरूदेव' नामक पुस्तक को लिपिबद्ध करने वाले आदरणीय गुरूभाई श्री ओम प्रकाश मित्तल जी एवं उनकी सहधर्मिणी श्रीमती शशि प्रभा जी श्री गुरूदेव भगवान के बड़े ही लाडले एवं कृपापात्र शिष्य रहे है। आज से कुछ वर्षों पूर्व श्री ओमप्रकाश मित्तल जी की जीवन ज्योति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अमर ज्योति में विलीन हो गयी। उस पुस्तक में श्री मित्तल जी ने लिखा है कि आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज की कृपा लीलाओं को सुनकर उनके मुकदमे की पैरवी करने वाले वकील साहब ने भी श्री प्रभु जी के दर्शन की इच्छा व्यक्त की। महान उद्योगपति श्री बिड़ला बन्धुओं से श्री मित्तल साहब का मुकदमा चल रहा था। अतः श्री मित्तल साहब आर्थिक एवं मानसिक परेशानी में थे। श्री ओमप्रकाश जी ने सोचा कि वकील साहब श्री सद्गुरू देव जी महाराज का दर्शन करना चाहते हैं, इन्हें दर्शन करा दिया जाय, हो सकता है कि प्रभु जी की कृपा हो जाय एवं वकील साहब हमारे मुकदमे की पैरवी कुछ अच्छी प्रकार से कर सकें। अतः अपने वकील साहब को साथ लेकर श्री मित्तल जी ने आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज के श्री चरणों में उपस्थित होकर प्रणाम किया। श्री मित्तल जी ने अपने वकील साहब का परिचय श्री गुरू जी महाराज

से कराते हुए बतलाया कि प्रभो ! आप ही हमारे वकील साहब हैं। श्री प्रभु जी ने मुस्कराते हुए अपने प्रिय शिष्य की बातों को सुना एवं फिर कर कमलों से प्रसाद उठा कर वकील साहब को दे दिया। कुछ देर तक वकील साहब श्री प्रभु जी के दरबार में बैठे रहे एवं उसके बाद चलने की इच्छा व्यक्त की। उनको थोड़ी दूर तक पहुँचाने श्री मित्तल महोदय भी गये एवं उनको विदा करके लौटे एवं श्री चरणों में प्रणाम कर दरबार में बैठ गये।

उनके प्रणाम करने के बाद श्री प्रभु जी ने अपनी गम्भीर वाणी में उनसे धीरे से कहा लल्ला ओमप्रकाश मुझे तुम्हारे वकील साहब कुटिल विचार के प्राणी लगे, इनसे भले की आशा करना व्यर्थ ही है। मेरी समझ से तुम वकील को बदल दो, तो ठीक रहेगा। मुकदमे में आधे से ज्यादा बहस हो चुकी थी और केस इनके पक्ष में जाता हुआ प्रतीत हो रहा था। अत: उन्होंने श्री चरणों में निवेदन किया कि प्रभो ! अब मुकदमे की कार्यवाही ज्यादा हद तक समाप्त हो चुकी है, थोड़ी सी बहस बाकी है और उसके बाद फैसला होना है। अत: इस समय वकील बदलने पर मुकदमे पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। मित्तल जी ने आगे निवेदन किया कि इस समय वकील बदलने पर मुकदमा खराब हो सकता है। इस प्रार्थना को सुनने के बाद प्रभु जी ने कहा कि देख लो लल्ला ! मेरी समझ से तुम्हारी भलाई तो वकील बदलने में ही है। प्रत्यक्ष एवं तत्काल हानि होने के भय से श्री मित्तल जी ने अपना वकील बदलना उचित नहीं समझा और उसी वकील से काम कराते रहे।

धीरे–धीरे फैसले की तारीख भी आ गई और जैसा कि आप सोच रहे होंगे वही फैसला हुआ। श्री ओमप्रकाश मित्तल केस हार गये। फिर जब ये श्री चरणों में उपस्थित हुए और उन्होंने अपनी दीन हीन दशा को करूणासागर श्री गुरूवर की सेवा में निवेदित किया तो करुणा सागर कुछ उदास से हो गये। उन्होंने कहा कि लल्ला ओम प्रकाश ! मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि मौजूदा वकील से तुम्हारा कल्याण होना संभव नहीं है। खैर, कोई बात नहीं, फैसले की नकल लेकर आगे मुकदमा दायर कर दो। अबकी बार मित्तल जी ने आराध्यदेव श्री सद्गुरू देव जी महाराज की आज्ञाओं का अक्षरश: पालन किया और आरम्भ से ही अपने पुराने वकील को छोड़ दिया और नये दो वकील रखकर मुकदमे की पैरवी आरंभ की। दयानिधान की करूणा कृपा से जीत इस बार ओमप्रकाश जी की हुई और ये उस केस को बाइज्जत रिहा हो गये।

सर्व समर्थ सिद्ध योगीराज की श्रेणी में आने वाले महापुरूष अपने शिष्यों को जो आदेश दिया करते हैं, उसका केवल बाह्य अर्थ ही नहीं, भीतरी अर्थ भी होता है क्योंकि गुरूजी का लक्ष्य तो शिष्य का अन्तिम कल्याण करना ही रहता है। अत: उनकी प्रत्येक आज्ञा इस प्रकार की होती है कि उसका पालन करने से शिष्य का लौकिक कार्य तो होगा ही मुख्य रूप से उसका पारलौकिक कार्य भी सधेगा। हमारे वे गुरू भाई बहन बड़े ही भाग्यवान एवं पुण्यवान हैं जो प्रभु जी की आज्ञाओं का अक्षरश: पालन किया करते हैं। उनका परम कल्याण तो होना ही है, शेष जो हम लोग हैं उन्हें भी आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज की आज्ञाओं का पालन करने का प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिये। यदि हम उनकी आज्ञाओं का पालन करने का प्रयत्न करते हैं तो उन लीलाधारी अकारण दयालु श्री महाप्रभु जी एवं आराध्यदेव श्री सद्गुरू देव जी महाराज की अवश्य ही कृपा होगी और लोक तथा परलोक दोनों का कार्य सध जायेगा।

***

श्री महाप्रभु जी की अहैतुकी कृपा

डा. स्वामी केशवाचार्य, बान्दोद (बड़ौदा)

२८.७.९९ को अर्थात् श्री गुरू पूर्णिमा को सायं गोधुलि बेला के समय हम कुछ भक्तों के साथ श्री नर्मदा के पुल पर बैठकर सत्संग कर रहे थे। कुछ भक्तों की शंकाऐं थीं, जिसका समाधान किया जा रहा है। समाधान करते–करते अनायास मुझे मेरे समक्ष जगत कल्याण कारक प्रातः स्मरणीय मेरे रक्षक श्री महाप्रभु जी ने दर्शन दिये। साथ ही मेरे द्वारा कहीं गई सभी बातों को श्रवण करते रहे। जैसे ही हमने अपनी बात समाप्त की, उसी समय श्री महाप्रभु जी ने आदेश दिया कि अब सभी बच्चे ध्यान मुद्रा में बैठ जाओ। हम सब पद्मासन लगाकर ध्यान में बैठे ही थे कि कुछ ही पलों में ही कुछ लोगों के आने की आवाज सुनाई पड़ी। वह आवाज बहुत ही प्रीतिकर थी। वह आवाज केवल श्री महाप्रभु जी की जय हो! जय हो! जय हो। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जय हो! एक बार नहीं अपितु अनेक बार यही उद्घोष उद्घोषित हो रहा था। श्री आनन्दकन्द श्री महाप्रभु जी ने मुझे आदेश दिया कि केशव देखो कौन लोग हैं, जय बोल रहे हैं। मैं आदेश पालन करने हेतु वहाँ से चलकर आगे बढ़ा तो देखते हैं कि प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री रामलाल जी महाराज महाप्रभु जी एवं ठीक बगल में परम पूज्य गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज पधार रहे हैं, साथ में है पं. श्री भुवनेन्द्र झा जी, श्री ओमप्रकाश ब्रह्मचारीजी, श्री मोहन लाल जी, श्री दास लाल ब्रह्मचारी जी, श्रीमती प्रेमलता गोस्वामी जी, श्री आर.सी.ठाकुर एवं खरे साहब तथा कुछ ऐसे गुरूभाई एवं गुरुबहन थे जिनका नाम मैं नहीं जान सका। जो लोग एक साथ मिलकर श्री महाप्रभु जी की जयजयकार कर रहे थे और आगे बढ़े चले आ रहे थे। मुझसे रहा नहीं गया मैं भी साष्टांग प्रणाम की मुद्रा में लेट गया जिस ओर से श्री महाप्रभु जी एवं श्री गुरूदेव जी का समस्त भक्तों एवं शिष्य मण्डल के साथ आगमन हो रहा था। मैं साष्टांग प्रणाम की ही मुद्रा में पड़ा रहा। मण्डली जब मेरे समीप आयी तो मेरे परमाराध्य श्री महाप्रभु जी के संकेत करने पर श्री गुरूदेव ने मेरी बांहों को पकड़ कर मुझे उठाया और हृदय से लगा लिया। फिर श्री महाप्रभु जी का जो दो स्वरूप था, एक तो पहले से विद्यमान जिन्होंने ध्यान करने का आदेश दिया दूसरा जो श्री गुरुदेव जी व शिष्य मण्डल को लेकर पधार रहे थे। उस स्थल पर पहुँचकर यह दोनों रूप एक हो गये जहाँ श्री महाप्रभु जी ने ध्यान करने का आदेश दिया था। पुनः सभी लोग ध्यान में तन्मयता पूर्वक तल्लीन हो गये। जो ध्यान लगभग एक घंटे तक चलता रहा। पश्चात् श्री महाप्रभु जी अपने आसन पर से उठ कर ध्यान करने वाले उपस्थित समस्त भक्तों के सिर पर हाथ रखते हुए श्री गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के शरीर में प्रविष्ट हो गये। श्री महाप्रभु जी की जयबोल कर हम सब लोगों ने श्री गुरूदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया त्यों ही जगदोद्धारक लीला पुरुषोत्तम् भगवान श्री गुरूदेव जी (श्री चन्द्र मोहन जी महाराज) भी अपने साथ लाये हुए भक्तों सहित अन्तर्ध्यान (अदृश्य) हो गये। अब वहाँ केवल हम सब जो पूर्व से ही सत्संग (शंका समाधान) में उपस्थित थे वही शेष रह गये। हम लोगों ने श्री महाप्रभु जी एवं श्री गुरुदेव जी की कृपा का अनुभव किया। उस दिन श्री गुरू पूर्णिमा का महोत्सव था। वहाँ से हम लोग अपने–अपने स्थान पर आये हम लोग प्रसन्नता एवं आनन्द का अनुभव करते हुए पूरी रात्रि श्री महाप्रभु जी एवं श्री गुरुदेव जी का ही कीर्तन भजन करते रहे। श्री गुरुदेव इस प्रकार कृपा की वर्षा करते हैं। श्री सद्गुरुदेव के समान कृपा सागर इस जगत में कोई और नहीं।

* * *

श्री अष्टावक्र–जनक प्रसंग

अंशुमान देव मालवीय (वाराणसी)

इस संसार में सर्वदा समय–समय पर अनेक विद्वान पैदा होते आये हैं। अष्टावक्र ऐसे ही एक विद्वान थे। बात बहुत समय पहले की है, जब एक अबोध बालक, जो कि अभी माँ के गर्भ में ही पल रहा था तभी उसको वेद, उपनिषद एवं वेदान्त की जानकारी थी उसके पिता जो की एक मुनि थे जब वह पाठ करते थे तब वे मन्त्रों का उच्चारण गलत करते थे तब वह अबोध बालक अपने माँ के गर्भ से ही उस उच्चारण को स्मरण कराते हुये कहा करता था कि पिताजी आप इस मन्त्र का गलत उच्चारण कर रहे हैं। ऐसा क्रमशः जब आठ बार हो गया तो मुनि ने क्रोध में आकर उस अबोध बालक को शाप दिया कि तुम्हारा शरीर आठ जगह से टेढ़ा रहेगा और वह बालक पैदा हुआ तो ऐसा ही देखने को मिला तब उसके पिता ने उस अबोध बालक का नाम अष्टावक्र रखा।

एक बार की बात है किसी राजा ने घोषणा करवा दी कि जो व्यक्ति उनके पूछे हुये सवाल का जवाब दे देगा उसको राजा इनाम देंगे और जो पराजित हो जाएगा उसको राजा बन्दी बना लेंगे। अष्टावक्र के पिता एवं मामा ने भी घोषणा सुनी और उसमें गये और राजा से पराजित हो गए तब राजा ने उन्हें बन्दी बना लिया जब अष्टावक्र जी ने यह सुना कि उनके पिता एवं मामा बन्दी हैं तो वह राजमहल पहुँचे और राजा से बोले आप मेरे से प्रश्न कीजिए मैं आपके सवाल का सही उत्तर दूंगा। तो राजा ने मजाक करते हुये कहा अभी तुम बालक हो तुम मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाओगे। तब अष्टावक्र ने कहा महाराज आप पूछ कर तो देखिये अगर मैंने आपका जवाब सही दे दिया तो आप मेरे पिता, मामा और सभी बन्दियों को छोड़ दीजियेगा। तब महाराज ने उससे दो प्रश्न पूछे। अष्टावक्र ने उनका जवाब सही दिया। तब राजा ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और सभी बन्दियों को छोड़ दिया।

एक बार मिथिला के राजा जनक के दरबार में राजगुरु का पद रिक्त हुआ। तो राजा जनक ने यह घोषणा कर दी कि जो भी मुझे एक उपदेश में पूराज्ञान करा देगा उसे इस दरबार में राजगुरू का स्थान मिल जायेगा। बहुत दूर–दूर से बड़े–बड़े पंडित एवं विद्वान आये। अष्टावक्र ने सोचा कि शुरूआत बोलने की मैं ही पहले करूँ तब अष्टावक्र के उठते ही सभी दरबारी हँस पड़े और बोलने लगे की इतने बड़े–बड़े विद्वान कुछ बोलने की हिम्मत नहीं कर पा रहे और यह मिथिला नरेश विदेह जनक को एक उपदेश में पूरा ज्ञान करा देगा। इस टेढ़े शरीर वाले आदमी अष्टावक्र ने किसी की बातों को ध्यान में न रखा और वह सीधे राजगुरु की रिक्त गद्दी पर जाकर बैठ गये और बोले कि महाराज राजगुरू बनाने से पहले आप मुझे गुरू दक्षिणा दीजिए और गुरू दक्षिणा में मुझ आप ही की अपनी चीज चाहिए। तब मिथिला नरेश जनक सोचने लगे कि जो यह राजमहल आज मेरा है वह कल किसी और का हो जायेगा धन दौलत नौकर, चाकर, बीबी, बच्चे कुछ भी मेरा नहीं है। यहाँ तक मेरा मन, बुद्धि और प्राण भी मेरा नहीं है। मेरा तो सिर्फ 'अहंकार' है जो कि मेरा है। तब महाराज जनक ने अष्टावक्र को कहा महात्मन मेरा तो इस संसार में कुछ भी नहीं है सिवाय अहंकार के और यह अहंकार मैं गुरू दक्षिणा के रूप में आपको समर्पित करता हूँ और राजगुरू का पद आपको देता हूँ।

हम सभी गुरू भाइयों को इस लेख से यह सीख लेना चाहिए कि इस संसार में अपना कुछ भी नहीं है। मनुष्य अहंकार के वजह से हमेशा दुःख पाता है और जब अपना अहंकार अपने गुरू के चरणों में समर्पित कर देता है, तब उसे पूराज्ञान हो जाता है। इस युग में गुरू मिलना बहुत ही दुर्लभ और कठिन है और जिनको सद्गुरू मिल जाते हैं उनको जनम–मरण से छुटकारा मिल जाता है। अतः हम सभी गुरूभाइयों को एकमात्र सहायक श्री सद्गुरू भगवान् की आरती पूजन एवं कृपा चरित्र वर्णन सदैव करते रहना चाहिये। ❋ ❋ ❋

।। श्री गुरुवे नमः ।।

नित्यलीलालीन योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

।। विनय श्री चरणों में ।।

सूर्यकान्त पाण्डेय

आज दिवस प्रभु जनम आप का,
पावन बेला फिर लाया है।
हे दिव्य भाव! हे दिव्य रूप!!
जन–जन का मन हरषाया है।१।।

प्रभु सकल सिद्ध स्वामी होकर,
निज मनुज रूप में आये तुम।
जग जीव रूप के कष्ट हरण
युग–योगेश्वर कहलाये तुम।।२।।

इस ग्राम अलूपुर को तुमने
निज मथुरा धाम–सा–धन्य किया।
कण–कण को योग छटा देकर
प्रभु सकल रूप का सृजन किया।।३।।

प्रभु रामलाल की धरोहर तुम
श्री 'सिद्ध–योग' के गुरुवर हो।
भव अन्धकार के नाश हेतु
प्रभु बने प्रकाश सरोवर हो।।४।।

करता हूँ शत् शत् नमन उन्हें
जिनके सुत, भ्रात सखा थे तुम।
उनका भी शत् शत् अभिनन्दन
जिनके पितु–मात कहाते तुम।।५।।

हे दीनबन्धु; हे दया सिन्धु
मम् पीड़ा बनी है असहनीय।
नहिं ज्ञान मुझे, नहिं ध्यान मुझे
ये विनय मेरी है वन्दनीय!।।६।।

हे ज्ञान बिन्दु! हे मुक्त सिन्धु
अब तो भव बन्धन मुक्त करो।
बन जाऊँ सकल तुम्हीं सा मैं
हे प्राण रूप ! मम् ध्यान धरो।।७।।

ये विनय नहीं है शब्दों की
नहीं शब्द मुझे जो कह पाऊँ।
प्रभु आप जगत अन्तरयामी,
जो ध्याओ मम् तो मैं ध्याऊँ।।८।।

आओ पितु–मात सखा मेरे,
हों उदित चरण मम् अन्तर में।
तुम से कुछ छिप नहीं गुरुवर
थल–नभ में और सरोवर में।।९।।

ये आज दिवस जो कह पाया
अपने जन्मों की पीड़ा को।
गज ग्राह्य सा मुक्त तुम्हीं करते,
फिर क्यों विलम्ब इस जीवन को।।१०।।

प्रभु लाज रखो निज चरनन की
जिन पतित अनेकन तारे हैं।
कर शक्तिपात उन पर गुरुवर
भव सागर तुरत उबारे हैं।।११।।

अब बनते हो सो बन आओ
एकबार मेरी, भव सागर की।
रहूँ विलग सदा जग बन्धन से,
जो शरण मिले, जग तारनकी।।१२।।

मैं जानूँ, मैं बन सका न वो
जो तेरी शक्ति को रख पाये।
फिर भी विश्वास है ये मेरा,
जिसे चाहो तुम, वो सब पाये।।१३।।

नहीं मेरा ये आरोप कोई
प्रभु तुम ने कुछ अन्याय किया।
फिर 'मैं' कुछ क्यों बन सका न वो
जो बनने को प्रभु ज्ञान दिया।।१४।।

मेरा 'मैं' स्थिर अटल रहा
मन अहं हूँक उठे क्षण–क्षण में।
अब तो गुरुवर, ये कर जाओ
तुम सा बन जाऊँ पल भर में।।१५।।

नहिं काम कोई हो इस जग से
न जग का काम रहे मुझे में।
'मैं' विशद सरल निर्मल बनकर
प्रभु ! मिल जाऊँ श्रीचरनन में।।१६।।

***

नाद–साधना

प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा

योग साधना का मुख्य लक्ष्य मन और प्राणों का लय करके समरसत्व रूप समाधि की स्थिति प्राप्त करना है। जब तक कर्म और भक्ति के द्वारा चित्त शुद्ध नहीं होता, तब तक योग की उच्च भूमिकाओं में प्रवेश नहीं होता। यम, नियम, आसन, प्राणायामादि की साधना से सविकल्पक समाधि की स्थिति प्राप्त होती है। इसे बहिरंग योग की साधना कहा जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि की साधना का उत्तरोत्तर विकास होने पर निर्विकल्प समाधि द्वारा राजयोग सिद्ध होता है। मनुष्य जीवन का चरम पुरुषार्थ नहीं है कि वह नाड़ी शोधन, वायु शोधन और ध्यानाभ्यास को श्री गुरु कृपा द्वारा प्राप्त कर अपनी जड़–चेतन की गांठ खोल कर त्रितापों से सदा–सदा के लिए मुक्त हो जाय।

योग साधना की सभी क्रियाओं का कार्य मन को एकाग्र करना है। मन जब तक एकाग्र नहीं है, तब तक न तो विषयानन्द का अनुभव हो पाता है, और न ब्रह्मानन्द का ही। मन को एकाग्र करने के अधिकारी भेद से अनेक साधन हैं। यथा मंत्र योग, हठयोग, लय योग तथा राजयोग। इनमें योगेश्वर दत्तात्रेय ने मंत्रयोग को अल्पबुद्धि युक्त साधकों के लिए उपयुक्त माना है–

मंत्र योगश्च यः प्रोक्तो योगानामधमः स्मृतः।
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमाः।। दत्तात्रेय संहिता

हठयोग भी बलवीर्य सम्पन्न प्राणशक्ति युक्त साहसी साधकों के लिए उपयुक्त होता है। स्वल्पवीर्यवान् कलयुगी प्राणियों के लिए सहज और सुख साध्य साधन **लय योग** माना गया है। अनेक सन्तों और योगियों ने इस लय योग का अनुष्ठान कर सिद्धिलाभ किया है। सहजिया सम्प्रदान और राधास्वामी सम्प्रदाय का यह लययोग ही मुख्य साधन है। योग तारावली के अनुसार योग जगद्गुरु भगवान सदाशिव ने सवा लाख प्रकार के लय योगों का उपदेश किया है। किन्तु जन सामान्य ध्यान द्वारा लय, रसास्वादन द्वारा लय, नादानुसंधान द्वारा लय आनन्दानुभूति द्वारा लय–इन चार प्रकार के उपायों द्वारा ही लय योग की साधना द्वारा सिद्धिलाभ करते हैं। घेरण्ड संहिता में उल्लेख है–

शाम्भव्या चैव खेचर्या, योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिर्चतुर्विधा।।

"अर्थात् लय योग के चार प्रकार हैं–शाम्भवीमुद्रा से ध्यानस्थ होना खेचरीमुद्रा से रसास्वादन करना, भ्रामरी कुम्भक से नाद सुवन योनिमुद्रा में स्थित होकर आनन्दभोग करना। इस प्रकार **नादानुसंधान, आत्मज्योतिदर्शन** और **कुण्डलिनी उत्थापन**– ये तीन प्रकार की साधनायें शीघ्र लाभ देने वाली हैं, **लय योग** की साधना से मन चटपट एकाग्र होकर कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा नवचक्र भेदन की प्रक्रिया में प्रवृत्त होता है। शास्त्रकारों ने इसीलिए कहा है– **जपाच्छतगुणं ध्यानं, ध्यानाच्छतगुणं लयः।'** अर्थात् ध्यान जप से सौ

गुना अधिक फलदायक है। ध्यान की अपेक्षा सौ गुणा अधिक फल दायी लय योग है। कृष्ण द्वैपायन आदि ऋषिगणों ने नवचक्रों के अन्दर उन उन शक्तियों का ध्यान कर मनोलय करके लय योग की साधना द्वारा कालचक्र को काटकर ब्रह्मलोक में अपना आसन जमा लिया है। इसके अतिरिक्त रसना को विभिन्न स्थानों से लगाकर रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द में लयता प्राप्त कर अन्य योगियों ने मनोलय की साधना द्वारा सिद्धिलाभ किया है। प्रस्तुत लेख में उन साधनाओं का उल्लेख न कर केवल **शब्द योग** या **नाद साधना** के आन्तरिक तथा संगीताभ्यास साध्य उसके बाह्य रूप पर कुछ–कुछ प्रकाश डाला जायगा।

नादयोग का अधिकारी

जिस साधक की जैसी योग्यता और सामर्थ्य है। तदनुसार ही हमारे पूर्वाचार्यों ने योग के विभिन्न रूपों की उसके लिये व्यवस्था दी है। शिवसंहिता में साधकों को चार श्रेणियों में बाँटा गया है– **मृदु, मध्य, अधिमात्र** तथा **अधिमात्रतम**। इनमें मृदु साधक मंत्रयोग का ही अधिकारी है। जिसका उत्साह मंद है, मूढ़ता से ग्रस्त है, आदि– व्याधियों से पीड़ित है, अपने गुरुदेव में दोष दृष्टि रखता है अथवा ऐसे उल्टे–पुल्टे काम करता है जिससे उसके गुरुदेव की भी निन्दा होती है, लोभी, पाप प्रिय, ठूंस–ठूंसकर भोजन करने वाला पेटू किस्म का, स्त्रियों के वश में रहने वाला, चञ्चल मति, अधीर, रोगी, पराधीन, अतिनिष्ठुर दीर्घ सूत्री और मन्द वीर्य साधक **मृदु साधक** कहलाता है। वह यदि लगन के साथ मंत्रजप करता रहे तो बारह वर्ष में (कलियुग में उससे चौगुने वर्षों में) सिद्धि लाभ कर पाता है। दूसरे प्रकार का मध्य कोटि का साधक लय योग का पात्र होता है लय योग की साधना से वह मुक्ति के द्वार तक पहुँच सकता है। ऐसे साधक में ये गुण होने चाहिए—सुख दुःख में समबुद्धि, क्षमाशीलता अतिशय दुःख की अवस्था में भी सत्कर्म करना नहीं छोड़ने वाला, पुण्य का सदा आकांक्षी, प्रिय बोलने वाला, मध्यमार्ग का चलने वाला, न अधिक उत्तेजित न अधिक आलसी अपने को सामान्य व्यक्ति की तरह रखकर जीवन यापन करने वाला, स्वाधीन वृत्ति वाला, स्थिर बुद्धि वाला, वीर्यवान, जिसके हृदय में सबके लिए स्थान हो, गुंजायश हो, दयाशील, क्षमायुक्त श्रद्धावान्, सत्य निष्ठ, श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों का सदा पूजन करने वाला यदि बड़ी लगन के साथ योगाभ्यास करे तो छः वर्षों में सिद्धिलाभ कर सकता है। जो देवता गुरु पूजन शास्त्र विश्वास सम्पन्न तथा अति उत्साही निरन्तर अभ्यास में लगा रहने वाला महावीर्यवान शास्त्रज्ञ, मिताहारी, जितेन्द्रिय, निर्भय, पवित्र, क्रियाकुशल, दाता तथा सभी का शरण्य, गुप्त रूप से साधना करने वाला, महाव्याधि रहित साधक प्रत्येक प्रकार के योग का अधिकारी हो सकता है। तीन वर्ष के सतत् अभ्यास से उसे प्रत्येक प्रकार से योग में सिद्धिलाभ होना संभव है।

लययोग से प्राण स्वतः स्थिर हो जाते हैं, और प्राणों के साथ मन भी स्थिर हो जाता है। मन प्राण के स्थिर होते ही कर्माशय चित्त अपनी मूल प्रकृति में चटपट लीन हो जाता है। जिससे सुखदुःख के द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं होता। जीवात्मा और परमात्मा की एकता होने पर स्वात्मानन्द का परम पद प्राप्त कर योगी

शीघ्र अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इसलिये जो उत्तम कोटि का साधक है उसे श्री गुरूदेव सभी प्रकार के योगों का अधिकारी बना देते हैं। जिससे वह अपनी अन्तर्भूमिकाओं को शीघ्र तय कर अपनी मंजिल पर पहुँच सके। जिस प्राणायाम की साधना के लिए हठयोग में कठोर परिश्रम करना पड़ता है वह साधना लययोग से सहज रूप से हो जाता है। **योग बीज** में उल्लेख है।

पवनः स्थैर्यमायाति लययोगोदये सति।
लयात्सम्प्राप्यते सौख्यं स्वात्मानन्द परं पदम्॥

नाद क्या ?

योग शास्त्र में कहा गया है कि **'नास्ति नाद सदृशोलयः'**—अर्थात् नाद के समान शीघ्र इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को चित्त और अहंकार में लय करने वाला दूसरा कोई साधन नहीं है। संगीत दर्पण में कहा गया है— इस ब्रह्माण्ड में नाद के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सारा जगत नाद के ही आधीन है। यह शब्द ब्रह्म ही वर्ण, पद, वाक्य और गीत और अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होकर जगत का सारा व्यवहार चला रहा है। **यह शब्द ब्रह्म ही नाद है।** जो शब्द ब्रह्म की साधना में सिद्धहस्त हो जाते हैं वे परम पद पाने में समर्थ हो सकते हैं—

'शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति। ब्रह्मविन्दुपनिषद।

तथा संगीत दर्पण में उल्लेख है—

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वचः।
वाचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्॥ १/१४

संसार की भाषा स्वर व्यंजन की ध्वनियों का मिश्रण है। स्वर स्वयं ही प्रभावी है व्यंजन स्वरों के प्रमाण से क्रियाशील बनते हैं। यह व्यक्तवाणी या ध्वनि के सम्बन्ध में है। दूसरी प्रकार की वाणी अव्यक्त या अनाहत ध्वनि कही जाती है। जो ईश्वर की इच्छा से या महाबिन्दु के कम्पन से जगत में व्याप्त है। उसे हर प्राणी नहीं सुन सकता है। केवल योगी ही सुन सकता है। इसी लिए वे सभी प्राणियों की भाषा का अभिप्राय जान लिया करते हैं। नाद दो प्रकार का माना जाता है—**आहत** अर्थात् बाहरी आघात जैसे ताड़न (ढोलक, तबलादि) **स्वर यंत्री घर्षण** (वीणादि) **श्वास संघर्षण** (शंख, वाणी आदि) तथा स्वयंत्री में—प्राणाग्नि के संघर्षण से **अ क ट, च** आदि ध्वनियों की उत्पत्ति। दूसरे प्रकार का नाद अनाहत अर्थात् बिना किसी बाह्य साधन के प्राणों के अन्दर ईश्वर की इच्छा से प्रकट हो रहा है। उसी में सत् चित् और आनन्द की अनुभूति मिलती है।

शब्द ब्रह्म प्राण और कायाग्नि के संयोग से निःसृत होता है। नाद ब्रह्म स्वयंभू ध्वनि (स्वर) प्रणवरूप है। प्राण बीज और अग्निबीज के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है। न = प्राण बीज + द = अग्नि बीज दोनों के संयोग से परब्रह्म की अनाहत ध्वनि प्रकट होती है। इसीलिए सब कुछ नाद के वश में कहा गया

है। योग शास्त्र में कहा गया है–

इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयोनाथः स लयो नादमाश्रितः।।

अर्थात् इन्द्रियाँ मन के वश में, मन प्राणों के वश में तथा प्राण लय के वश में और लयता नाद के वश में है।

माया के वश में आबद्ध जीव सुषम्णा मार्ग के अवरुद्ध होने के कारण आकाश मण्डल में ॐकार की ध्वनि के रूप में व्याप्त अखण्ड नाद को प्राण और मन के चंचल होने के कारण सुनने में असमर्थ है। हमारा श्वास–प्रश्वास इड़ा–पिंगला नाड़ी द्वारा बहिर्मुखी हो रहा है। जिससे बाहरी ध्वनि को ही सुनने का अभ्यास हो चला है। किसी किसी पुण्यात्मा पर जब श्री सद्गुरु कृपा होती है, तब प्राण और सूक्ष्म हो जाते है और सुषम्णा मार्ग उन्मुक्त होकर मन शून्य पथ में पहुँचकर इस अनहत नाद को सुनने का सौभाग्य प्राप्त करता है। जिस अवस्था के सम्बन्ध में योगी नानक का कहना है–**'अनहद नाद सुनो बड़भागियाँ, सकल मनोरथ पूरै।'** इस अनहद नाद श्रवण से इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि परम आनन्द के समुद्र में डूब जाती हैं।

इस शब्द ब्रह्म की चार अवस्थायें है–**परा, पश्यन्ती, मध्यमा** और **वैखरी**। वैखरी और मध्यमा ध्वनि तक कुछ लोगों की पहुँच हो लेती है। किन्तु परावाणी और पश्यन्ती वाणी तक उन्हीं साधकों की पहुँच हो पाती है जिनका रज–वीर्य स्थिर है। तथा बिन्दु सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। शान्त निश्चल समुद्र में वायु के आघात से जैसे लहर उठती है, उसी प्रकार बिन्दु में आनन्द का क्षोभ होने से नाद और ज्योति उत्पन्न होती है। नाद का आविर्भाव **वाक्** के रूप में और ज्योति का प्राकट्य **अर्थ** के रूप में होता है। मंत्र जप में जब तक नाद और ज्योति प्रकट न हो तब तक मंत्र जप सफलता नहीं देता। नाद का सूक्ष्म और परम रूप **प्रणव** या **ॐकार** है। ॐकार में अर्द्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना और उन्मना ये बारह सूक्ष्म अंश विद्यमान है। भावसहित जप तथा ध्यान द्वारा नादानुसंधान करते हुए उन्मनी अवस्था तक पहुँचा जाता है। जहाँ मनोलयी की स्थिति होती है। अ, उ, म ये जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति की तीन दशायें माया के आधीन है। मकार का भेदन किये बिना शुद्ध ज्ञान और बिन्दु की दृढ़ता नहीं होती। अनाहत चक्र से चलकर भ्रूमध्य ऊपर स्थित होने पर बिन्दु का साक्षात्कार होता है। बिन्दु साक्षात्कार होने पर तीसरा नेत्र खुल जाता है। जिससे योगी को समस्त विश्व का **त्रिकाल दर्शन** होने लगता है। भ्रूमध्य के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त नाद का अनुभव होता है। नाद का आश्रय लिये बिना शून्य पथ में **तुरीयावस्था** में गमन करना कठिन है। **ॐकार साधना** को ही कुछ सम्प्रदाय **नाद साधना** कहते है। उसी की प्राप्ति के लिए संगीत कला का प्रादुर्भाव हुआ है।

पाश्चात्य देशों में संगीत के रागों और ध्वनि लहरियों से पड़ने वालों का गहराई से अध्ययन किया गया है। संगीत को रोग–मुक्त करने की Therapy का अनेक लोगों ने सफल प्रयोग किया है। संगीत के

प्रभाव से गाँवों में दूध की मात्रा बढ़ाने के सफल प्रयोग हुए हैं मधुर संगीत के प्रभाव से वनस्पतियाँ और वृक्षों की वृद्धि तथा पुष्पित, पल्लवित तथा फल देने की प्रवृत्ति में सुधार देखा गया। युद्ध के समय वीरों में उत्साह पैदा करने के लिए मेरु और मृदंग वाद्य–ध्वनियों का आज भी प्रयोग होता है। हमारे शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर संगीत का तत्काल प्रभाव पड़ता है। इसी वजह से संगीत का प्रयोग रोग–मुक्ति की चिकित्सा पद्धति के रूप में शुरू हो गया है। संगीत मस्तिष्क को चेतना प्रदान करता है और मनुष्य की आत्मा को उन्नत बनाकर आत्मिक शक्ति प्रदान करता है। यूनान के महान दार्शनिक Plato ने शरीर के लिए व्यायाम और आत्मा के लिए संगीत के महत्व को स्वीकार किया है। थाईलैण्ड के एक वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि संगीत व प्रेम का पौधों के विकास में तीव्रगामी प्रभाव होता है। संगीत सुनते समय मानव सुध–बुध खो बैठता है और आत्म–विभोर होकर झूमने लगता है। यह एकाग्रता उत्पन्न करने का सर्वोत्तम साधन माना गया है। भारत वर्ष में संगीत के क्षेत्र में अनेक ताल लय और बंदिशों को जन्म मिला। जैसे अमीर खुसरो ने दक्षिणी वीणा में ४ तारों के स्थान पर ३ तार लगाए और उसे सहतार की संज्ञा दी जो आगे चलकर सितार हो गया।

संगीत के माध्यम से **नादयोग** की स्थिति प्राप्त कराने के उद्देश्य से योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज ने झांसी में **प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय** का श्री गणेश किया। वहाँ अपने शुभ संकल्प एवं शक्तिपात से भाई–श्री कृष्णकान्त झा जी को संगीत शिक्षा प्रदान करने का निमित्त चुना है। श्री गुरुदेव जी के आशीर्वाद फलस्वरूप इस विद्यालय से राष्ट्रीय ख्याति के नवोदित कलाकारों का जन्म हो रहा है। प्रतिवर्ष आश्विनमास दशहरे के आस पास वहाँ संगीत की अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ करता है। श्री झा जी के सर्वतोभावेन श्री गुरुचरणों में समर्पण का ही सुपरिणाम है कि प्रतियोगिता में देश के मूर्धन्य कलाकार आकर श्री गुरुदेव के श्री चरणों में अपनी उपस्थिति अंकित कर स्वयं को धन्य समझते हैं।

जिस प्रकार **षट्चक्र** या **नवचक्र** बेधकर **कुण्डलिनी शक्ति** को मूलाधार से उठाकर सहस्रार चक्र तक ले जाकर वहीं लय कर परावाक् की अद्वैत भूमि में योगी आनन्दानुभूति करता है, उसी प्रकार नाद की बाह्य साधना के रूप में संगीत (नृत्य, गीत और वाद्य) भी आत्म साक्षात्कार का सबल साधन है। हमारे जितने भी अधिष्ठात् देवगण हैं, वे सभी कोई न कोई वाद्य अवश्य बजाते हैं। जैसे भगवान शंकर मृदंग, डमरू, और मुरज, भगवान श्री कृष्ण वेणु, माँ सरस्वती वीणा, ब्रह्मा जी भी वीणा और भगवान विष्णु शंख बजाते हैं। परमहंस परिव्राजकाचार्य संत शिरोमणि नारद जी अपनी वीणा का स्वर तीनों लोकों में अप्रतिहत गति से बजाते चलते हैं। सृष्टि के प्रत्येक स्पन्दन में लय, ताल और ध्वनि के अतिरिक्त और क्या है ? पक्षियों की कुहू–कुहू, मेढ़क की टर्र–टर्र, बादलों का गर्जन, सर्वत्र ही एक मधुर संगीत सुनाई पड़ता है। हमारे सभी आचार्यों ने मनुष्य के अन्दर सूक्ष्म शरीर के चक्रों और प्रकृति के उपादानों से सप्तस्वर, राग, आलाप, ताल आदि की

सृष्टि की है। नारदीय शिक्षा में सप्तस्वरों और तान, मूर्च्छना, ग्राम, लय, ताल आदि का सूक्ष्म विवेचन मिलता है—

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छना त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपंचाशत् इत्येतच्छ्रुति मण्डलम्।।

अर्थात् स्वर सात होते हैं— षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत तथा निषाद। ग्रामतीन हैं। प्रत्येक ग्राम में सात–सात मूर्च्छना होती है। रागों की अभिव्यक्ति मूर्च्छना कहलाती है। यथा गान्धार ग्राम की मूर्च्छना हैं—नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा तथा बला। इसी प्रकार तान उनचास हैं। यह सब मिलाकर **श्रुति मण्डल** कहा जाता है। षड्ज का प्रादुर्भाव भूलोक से, मध्यम का अविर्भाव भुवः लोक से तथा स्वः लोक से गान्धार ग्राम का आविर्भाव है। हमारे शरीर में नाभि से नीचे भूलोक है, नाभि से कण्ठतक भुवः तथा कण्ठ से ऊपर स्वर्गलोक है। **षड्ज** का नाद मयूर की ध्वनि की तरह **ऋषभ** गाय के रम्भाने की ध्वनि जैसा, **गान्धार** बकरी की ध्वनि जैसा, **मध्यम** क्रौञ्च पक्षी की ध्वनि जैसा, **पञ्चम ध्वनि** बसन्त कालीन कोकिल ध्वनि के सदृश, **धैवत** घोड़े के हिनहिनाने की ध्वनि के सदृश तथा **निषाद** हाथी के चिंघाड़ने की ध्वनि जैसा गाया जाता है।

सामवेद नाद–विज्ञान का मूल स्रोत है। उसी से विश्व की प्राचीनतम संगीत विद्या निकली है। इसलिए भारत देश में संगीत, कला, चित्रकला और नाट्यकला को ईश्वरीय विद्या माना जाता है। सृष्टि के आदि देव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सृष्टि के उद्भव, स्थिति और प्रलय के संगीत के आदि आचार्य माने जाते हैं। महेश नटराज के रूप में अनेक प्रकार के ताल–लय का सृजन करते हैं और ब्रह्मा करताल बजाकर तथा विष्णु मृदंग बजाते हुए उनकी संगति करते हैं। सभी विद्याओं की अधिष्ठात्री देवी वीणा–वादिनी सरस्वती देवी सभी झंकृत स्वर और तार–वाद्यों की जन्मदात्री हैं। वीणा हमारी कुण्डलिनी शक्ति का प्रतीकात्मक स्वरूप है, वीणा वादन के रहस्य को समझकर संगीत की साधना से समाधि लाभ किया जा सकता है। इसका विस्तृत वर्णन आगे प्रस्तुत किया जाएगा।

पाश्चात्य संगीत यथा पॉप, रॉक म्यूजिक, मेटल आदि अवैज्ञानिक और कान फोड़ू होने के साथ–साथ शरीर की अंतः स्रावी ग्रन्थियों को आहत करने वाली, हृदय और मस्तिष्क की कोमल आनन्दानुभूति दायी रसमय भावों को कुचलकर रख देते हैं जिससे व्यक्ति का सृष्टि के संगीत के साथ संतुलन तो बिगड़ता ही है, वह स्वयं में उत्तेजित, विक्षिप्त और नैराश्य में निमग्न स्वयं को पाता है। परिणामस्वरूप संगीत से प्राप्त होने वाली समरसता के स्थान पर उसकी जीवनी शक्ति का ह्रास होता है और वह आत्म–साक्षात्कार से कोसों दूर हो जाता है। हम अपने व्यवहारिक जीवन में भी यह देखते हैं कि कोई व्यक्ति गला फाड़कर और शोरगुल करके अपनी बात कहनी चाहे तो उसे समझदार आदमी यही सलाह देते हैं कि शांत होकर, तसल्ली से प्रेमपूर्वक अपनी बात कहो। फिर ईश्वर को आत्मनिवेदन करने के लिए माईक की गर्जना–बर्जना, ढोल

का ढम–ढम बेसुरा चीत्कार ईश्वर को कैसे अच्छा लग सकता है ? संगीत आत्म निवेदन का सबसे सहज साधन है किन्तु वह भक्ति संगीत होना चाहिए, कान–फोड़ू संगीत नहीं। भक्ति संगीत राग–रागिनियों का ऐसा वैज्ञानिक संगठन है जिससे इन्द्रियाँ, मन, हृदय और चित्त आनन्द से ओत–प्रोत होने लगते हैं और संगीत सुनते ही देहाध्यास समाप्त हो जाता है।

राग–रागिनियों का निर्धारण, जिन्हें स्वरग्राम भी कहा जाता है–भारतीय संगीत का प्राण है। छः मूल राग माने जाते हैं और उनकी १२६ शाखाएँ–उपशाखाएँ हैं जिन्हें रागिनियाँ (पत्नियाँ) और उपशाखाएँ (पुत्र) कहते हैं। प्रत्येक राग के ५ स्वर होते हैं। मूल स्वर को "वादी" या "राजा" आनुषंगिक स्वर को "समवादी" या "प्रधानमंत्री, सहायक स्वरों को "अनुवादी" या "अनुगामी" और अनमेल को "विवादी" या शत्रु कहते हैं। ६ रागों का संबंध वर्ष की विशिष्ट ऋतु और दिन के विशिष्ट समय से प्राकृतिक सामन्जस्य होता है। प्रत्येक राग का विशिष्ट शक्ति प्रदाता अधिष्ठाता देवता होता है। जैसे **हिन्डोल राग** जो सार्वभौम प्रेम के मनोभावों का उद्दीपक है। वह केवल बसन्त ऋतु में सूर्योदय के समय सुना जाता है। **दीपक राग** जो दया के भाव जागृत करता है वह ग्रीष्म ऋतु की सन्ध्या वेला में गाया जाता है। साहस का संचार करने वाला **मेघ राग** वर्षा–ऋतु के मध्याह्न में गाया जाने वाला राग है। शान्ति प्राप्ति के लिए **भैरव राग** अगस्त, सितम्बर और अक्टूबर महीने को प्रातः वेला में गाया जाता है। विशुद्ध प्रेम का उत्प्रेरक **श्री राग** शरद ऋतु की गोधूलि वेला में गाया जाता है। शौर्य भाव को उद्दीप्त करने वाला **मालकोस राग** शीत ऋतु की मध्य रात्रि में गाया जाता है।

हमारे देश के ऋषियों, मनीषियों और योगियों ने मानव प्रकृति और भौतिक प्रकृति के बीच एक सूत्र में कार्य करने वाली जिस शक्ति का आविष्कार किया, उसे ही **नाद–ब्रह्म, प्रणव–हंकार ओंकार ध्वनि** अथवा **स्वर मैत्री** की अद्भुत शक्ति कहा गया है। मंत्र–शक्ति के मूल में भी नाद–ध्वनि और स्वरों का विज्ञान कार्य करता है। विशिष्ट मंत्रों और राग–रागिनियों के प्रयोग द्वारा प्राकृतिक शक्तियों को अपने नियंत्रण में कर लिया गया था। अकबर के दरबारी महान संगीतज्ञ अपनी गायन शक्ति से (दीपक राग) आग प्रकट करने में समर्थ थे। एक बार बादशाह अकबर ने तानसेन को आदेश दिया कि वो रात्रिकालीन राग को दिन में गाकर सुनाए। आदेश के पालन हेतु तानसेन ने उस राग की जैसे ही तान देड़ी, कहा जाता है कि उसी क्षण महल के अंदर अंधकार छा गया।

भारतीय संगीत काव्य में **स्वर सप्तक** अर्थात् **स्वर मण्डल** को श्रवणेन्द्रिय ग्राह्य, सूक्ष्म विभागों के रूप में २२ श्रुतियों में विभक्त किया है। स्वरों के स्थूल से सूक्ष्म अन्तरालों के कारण संगीत की उत्तमोत्तमता प्रकट होती जाती है। पाश्चात्य संगीत में १२ अर्ध स्वरों के वर्णित स्वरग्राम हैं उनसे सूक्ष्म अंतरालों का अवगाहन नहीं हो पाता। हमारे पुराणों में सप्तक के ७ मूलभूत स्वरों का एक निश्चित रंग और पशु–पक्षी के कण्ठ से उसका सादृश संबंध बताया गया है। जैसे **सा**–का संबंध हरे रंग और मोर के कण्ठ से, **रे** का

संबंध–लाल रंग और चातक पक्षी से, गा का संबंध–सुनहरे रंग और बकरी से, मा का पीला लिए हुए सफेद रंग और सारस पक्षी से, पा का काला रंग और कोकिल से, धा का पीत रंग और अश्व से, नी का संबंध सभी रंगों और हाथी से है।

भारतीय संगीत में ७२ थाटों का विधान है जबकि पाश्चात्य संगीत में केवल ३थाट है। यथा आधार पद, समस्वर, ह्रस्व पद और मूर्च्छनामय ह्रस्वपद। भारतीय संगीत शास्त्र परम्परा में संगीतज्ञ को निर्धारित शुद्ध परम्परागत लय या राग के निर्धारित शास्त्रीय ढांचे में अपनी प्रतिभा के अनुसार स्वर सृष्टि के अनगिनत सुयोग प्राप्त है। वह विषय वस्तु में प्रतिबिंबित स्थायी भाव या उसकी वर्णात्मक मनोभाव व्यंजना को आधार बनाकर अपनी स्वतन्त्र मौलिकता से उसे नयापन देता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत परम्परा में संगीतज्ञ नियोजित स्वरों का पाठ नहीं करता अपितु वह हर गान के समय राग को नए–नए सुरों के ताने–बाने से सजाता है। जिसे आलाप कहते हैं। आलाप में गायक विलंबित, मध्य और द्रुत, इन तीन प्रकारों की गति और आश, मींड, कंपन आदि के सहारे स्वर –वैचित्रय की सृष्टि करता है। भारतीय प्राचीन संस्कृत संगीत शास्त्र में १२० प्रकार के तालों (time measures) का उल्लेख है। आचार्य भरत मुनि भारद्वाज पक्षी (लवा) के कण्ठ स्वर में ३२ प्रकार के तालों का निरूपण करने में समर्थ हुए।

ताल या लय का मूल मनुष्य की पैरों से चलने से दुगुने समय और मुद्रावस्था में प्रश्वास की अपेक्षा दुगुने वेग से निकलती हुई श्वास की लम्बाई माना गया है। ताल या लय में श्वास–प्रश्वास का तिगुना समय मध्यमान के रूप में निश्चित है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का मूल प्राण स्वर–माधुर्य माना गया है। जिसका लक्ष्य वाद्य संगीत की क्षमा–चौकड़ी न होकर अंतर्मुखी, आध्यात्मिक और परमात्मा के साथ व्यक्तिगत समरसता की उपलब्धि है। संगीतज्ञ के लिए भागवत शब्द का संस्कृत में प्रयोग आता है। सभी विख्यात संगीतज्ञ भगवान का गुणगान करने वाले व्यक्ति थे। उनके द्वारा गाए गए गीतों का मुख्य प्रयोजन हमारे शरीर में स्थित गुप्त और सुप्त सुषुम्ना नाड़ी के केन्द्रों, चक्रों, सूक्ष्म पद्मों और कुण्डलिनी का जागरण करना था। इसी अवधारणा के फलस्वरूप हमारे दादा गुरू महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज ने अपने प्रिय शिष्य ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी को **'गोविन्द जय जय, गोपाल जय जय। राधारमण हरि गोविन्द जय जय।'** इस संकीर्तन का प्रचार–प्रसार करने का आदेश दिया था। लाहौर की कृष्णा गली नं. २ की छत पर रात के समय मधुर ध्वनि में संकीर्तन करते–करते सैकड़ों की संख्या में भक्तजन रात–रात भर समाधिस्थ बने पड़े रहते थे। योग और आध्यात्मिक साधना का प्रभावशाली साधन है –संकीर्तन। इसमें समवेत स्वरों के ध्वनि–कंपन से गहन एकाग्रता प्राप्त होती है। जिससे वह तत्काल आनन्द में डूब जाता है। और सुषुम्ना के चक्र स्पंदित होने लगते हैं जिससे उसके अंदर ईश्वरीय चेतना का उन्मेष तथा आह्लाद होता है।

वीणा और षट्चक्रों की स्थिति में साम्य

वीणावादन नाद–ब्रह्म की साधना का सर्वोत्कृष्ट साधन है। इसके द्वारा वीणा के नाद और कुण्डलिनी स्थित प्राण साम्य अवस्था को प्राप्त होते है। वीणा के तारों से जैसे–जैसे वीणावादक की अंगुलियों का स्पर्श

होता है, वैसे–वैसे वादक के मेरुदण्ड में स्थित सुषुम्ना नाड़ी के संवेदी केन्द्रों और चक्रों पर सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। और वादक समाधि योग की ओर अग्रसर होता जाता है। आत्रेय आरण्यक के द्वितीय भाग के पंचम अध्याय में आत्रेय ऋषि कहते हैं–**अथ खलुयमं में देवी वीणा भवति, तदानुकृति मानुषी वीणा भवति।** अर्थात् मनुष्य का शरीर दैवी वीणा है। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर की रचना हुई है उसी प्रकार वीणा की भी रचना है। ईश्वर ने मनुष्य के मेरुदण्ड के रूप में जिस प्रकार दैवीय वीणा की रचना की है उसी अनुकृति के रूप में मनुष्य ने काष्ठादि से निर्मित वीणा वाद्य की रचना की है। मनुष्य के वंस स्पृष्ट के आधार में जिस प्रकार कूल्हें हैं उसी प्रकार वीणावाद्य का आहार निर्मित है। मनुष्य का शरीर जिस प्रकार मेरुदण्ड की नाड़ियों को संभाले हुए है। उसी प्रकार वीणा वाद्य के तारों को उसका ऊपरी भाग संजोए हुए है वीणा में जिस प्रकार २४ विभाग हैं उसी प्रकार मेरुदण्ड में २४ कशेरुकाएँ (vertebrae) हैं। ये २४ कशेरुकाएँ शरीर रचना विज्ञान की दृष्टि से इस प्रकार विभक्त है– गर्दन से संबंधित cervical की ७, पीठ और कमर से संबंधित (dorsal) की १२, कमर से संबंधित lumbar की ५। इस प्रकार कुल २४ जोड़ हैं। जिस प्रकार शरीर की रचना नीचे से ऊपर की ओर कम होती जाती है उसी प्रकार वीणा की रचना में भी है। उसके नीचे का भाग चौड़ा व ऊपर का भाग संकरा होता है। वेदों में मेरुदण्ड को वीणादण्ड कहा गया है और नीचे के भाग को सिंह मुख, ऊपर के भाग को ब्रह्मरन्ध्र ब्रह्मनाड़ी, ॐ, पराशक्ति तथा कुण्डलिनी शक्ति की वाहिका कहा गया है। यह २४ अंगों का परस्पर संयोग, गायत्री के २४ अक्षरों की अनुकृति हैं। देवी गायत्री में सूक्ष्म रूप से विद्यमान २४ तत्व मेरुदण्ड के २४ अण्डों में विद्यमान है, व्यष्टि और समष्टि की एकात्मका कितनी अपूर्व है। शरीर विज्ञान शास्त्री बताते हैं कि मस्तिष्क नाड़ियाँ, मेरुदण्ड के (vertebral column) के द्वारा शरीर में व्याप्त है। उसके अन्दर विद्यमान इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, चित्रा, वज्रा और ब्रह्मनाड़ियों को शरीर विज्ञानी देखने में असमर्थ है। चीड़–फाड़ या X-ray या अन्य किसी यान्त्रिक विधि से देखना असंभव है। केवल योगी अपनी सूक्ष्म अंतदृष्टि से आत्म–साक्षात्कार कर सकता है। कभी–कभी शरीर में उन नाड़ी की गति और उत्तेजना को अनुभव करते हैं।

अनेक प्रकार की वीणाओं का उल्लेख संस्कृत साहित्य में आता है। यह प्राचीन वाद्ययंत्र है। हिन्दु ज्योतिषशास्त्र में तुला राशि का स्वाति नक्षत्र और हंस से संबंध है। हंस वीणा वादिनी सरस्वती का वाहन है। स्वाति नक्षत्र की आकृति वीणा के सदृश बताई गई है। वैज्ञानिकों ने इससे निसरित ध्वनि का अध्ययन करके यह ज्ञात किया है कि इससे निसरित नाद पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं और मनुष्य के अंदर भी यह व्याप्त है। जिसे सुनने के लिए उसे सूक्ष्म जगत में प्रवेश करना पड़ेगा। इसी मान्यता के आधार पर तुला राशि वालों को संगीत में स्वाभाविक रुचि होती हैं जिस प्रकार सभी आभूषणों में सोना विद्यमान है, उसी प्रकार सभी राग–रागिनियों में वीणा व्याप्त है। वीणावादन सर्वोच्च योग–साधना है। इससे जीवात्मा और परमात्मा का एक्य स्थापित होता है। जब वीणावादक वीणा में से आधारभूत शक्ति–कुण्डलिनी से स्वर खींचता है तो वादक के प्राण वीणा की झंकार के साथ ऊपर के केन्द्रों में गति करने लगते हैं। जब वह मूर्छा की स्थिति में वीणा–वादन

करता है, वहाँ योग की समाधि की स्थिति होती है।

सुषुम्ना नाड़ी में ओंकार की रहस्यमय ध्वनि स्फुटित होती रहती है। शारदा देवी के कर कमलों में सुशोभित वीणा इसी ध्वनि के विज्ञान का प्रतीक है। वीणा के तार पर घर्षण होते ही इस प्रकार ध्वनि झंकृत हो उठती है, उसी प्रकार योगी षण्मुखी मुद्रा में ओंकार की झंकार का अनुभव करने लगता है। वीणा यंत्र की बाह्य झंकार और सुषुम्ना की आन्तरिक झंकार में एकरूपता है। वीणा में मन्द्र, स्थायी ध्वनि निम्न स्तर से उठती है उसी प्रकार मूलाधार चक्र से ध्वनि का स्फुरण होता है। मन्द्र से मध्यमा और मध्यमा से तार, इन तीन तालों का अन्दर भी अ, ऊ, म ध्वनियों में गर्जन होता है। वीणा के सप्त स्वर सुषुम्णा नाड़ी के बीज मंत्र की ध्वनि के सदृश होते हैं। जैसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार। ये सभी स्वर परस्पर संयुक्त और संलिष्ट होकर नाना प्रकार की राग–रागनियों की सृष्टि करते हैं। सहस्रार कमल में षडज स्वर 'सा' की स्थिति है। जहाँ पर ब्राह्मी शक्ति स्थित है और नाद–ब्रह्म का विसर्गात्मक 'अः' स्वरूप है। यह 'सा' स्वर वाली षडज शक्ति सुषुम्णा मार्ग में टेड़ी–मेड़ी होती हुई मूलाधार पर्यन्त गमन करती हुई वहीं स्थित हो जाती है। यह कुण्डलिनी शक्ति है। जिसका पृथ्वी तत्व है और उसकी गति मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त है। यह सभी शक्तियों में प्रधान है। अतः षड्ज स्वर की साधना करने वाला गायक दिव्य गन्ध प्रकट कर सकता है। दूसरा स्वर **ऋषभ** (रे) माहेश्वरी शक्ति समन्वित है। यह षड्ज की भाँति सहस्रार से प्रारम्भ होकर मूलाधार चक्र पर्यन्त गमन करते हुए आज्ञाचक्र में स्थित हो जाता है। यह चक्र भौहों के बीच में स्थित है। ऋषभ स्वर की साधना में सिद्धहस्त, देवताओं और सिद्धों को आकर्षित करने में समर्थ होता है। तीसरा स्वर गान्धार (गा) कौमारी शक्ति समन्वित है। यह सहस्रार से चलकर, मूलाधार पहुँचकर, कण्ठस्थानीय विशुद्ध चक्र में स्थित होता है। इस स्वर का साधक सभी पशु पक्षी और प्राणी को आकृष्ट करने में समर्थ होता है। चतुर्थ स्वर मध्यमा (मा) वैष्णवी शक्ति से समन्वित है जो सहस्रार से चलकर मूलाधार होते हुए हृदय के निकट अनाहत में विश्राम पाता है। इस स्वर का साधक पत्थर को भी पिघलाने की ताकत रखता है। पंचम 'पा' स्वर वाराही शक्ति से समन्वित है जो सहस्रार से मूलाधार गमन करते हुए लौटकर नाभि के समीप मणिपूर चक्र में विलीन होता है। इस चक्र का साधक अग्नि प्रकट करने में समर्थ होता है। छठा स्वर धैवत (ध) इन्द्राणी शक्ति समन्वित है, जो सहस्रार से चलकर, मूलाधार होकर स्वाधिष्ठान (नाभि के नीचे) में लय होता है। ऐसा साधक वर्षा कराने में समर्थ होता है। सातवाँ स्वर 'नी' चामुण्डी शक्ति से समन्वित तथा सहस्रार से मूलाधार गमन कर वहीं विश्राम करता है। इसकी ऊर्ध्वगति नहीं होती। ऐसा साधक निद्रा लाने, रोगों को दूर करने में समर्थ होता है। सभी सातों स्वर, सहस्रार की ब्राह्मी शक्ति से उत्पन्न होकर अंत में ब्राह्मी शक्ति में ही लय हो जाते हैं और परब्रह्मशक्ति के साथ एकाकार हो जाते हैं इनका संबंध क्रमशः **भूलोक, भुवः लोक, स्वः लोक महःलोक, जनःलोक और तपः लोक** तथा **सत्यलोक** से है। इस प्रकार यह नाद–ब्रह्म समस्त सृष्टि में ओत–प्रोत है जिसकी साधना के दो पक्ष हैं— एक बाह्य संगीत की साधना का पक्ष और दूसरा परापश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी से निःसृत अनाहत नाद को योग विधि से सुनना।

इस विधि को नादानुसंधान कहते हैं।

नाद–साधना लय योग का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसकी प्रक्रिया बहुत सरल और सुख साध्य है। आदि शंकराचार्य ने कहा है–

"नादानुसंधानसमाधिमेकम् मन्यामहे मान्यतमम् लयानाम्।"

अर्थात् नाद ध्वनि के निरन्तर सुनने से इन्द्रियाँ, मन और चित्त आनन्द में लय हो जाता है और समाधि का आनन्द प्राप्त होता है। नवनक्रेश्वर तो यहाँ तक कहते हैं कि जो व्यक्ति परापश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी आदि नाद–तत्व को ठीक–ठीक जानता है, वही गुरु होने की योग्यता रखता है। नाद साधना शक्ति स्वरूपा आद्या कुण्डलिनी शक्ति की उपासना है। हृदय देश में अनाहत ध्वनि सुनने से आनन्द का प्रसाद प्राप्त कर साधक मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर होता है। योग तारावली में उल्लेख है कि –

"शृणोति श्रवणातीतम् नादम् मुक्तिर्नसंशयः।"

तथा हठयोग प्रदीपिका ४/२९ में उल्लेख है कि नादानुसंधान से प्राण वायु वशीभूत हो जाती है और मन का नाद में लय हो जाता है–

इन्द्रियाणाम् मनोनाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयोनाथः स लयो नादनाश्रितः।।

अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी मन और मन का स्वामी वायु। प्राणवायु का लय स्वामी है। मन लय होकर नाद में अवस्थित होता है। जब तक जीवात्मा और परमात्मा का संयोग नहीं होता तब तक अनाहत ध्वनि होती रहती है। दोनों का संयोग होते ही अनाहत ध्वनि परब्रह्म में लीन हो जाती है।

नादानुसंधान की तैयारी के लिए पहले भ्रामरी प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी को चैतन्य करना चाहिए। फिर इड़ा नाड़ी (बाएँ नथने से) से वायु धीरे–धीरे फेफड़ों में भरकर कुण्डलिनी के आधारभूत मूलाधार के त्रिकोण पर आंतरिक धारणा से कुम्भक स्थिति में जोर से चोट मारनी चाहिए। उसके बाद दाहिने स्वर से वायु का रेचन करना चाहिए। यह प्रक्रिया प्रतिदिन उषाकाल, दोपहर और सन्ध्या समय करनी चाहिए। कुछ दिन बाद आधी रात को एकांत में आसन पर बैठकर पूर्ववत वायु को कुम्भक करके दोनों हाथ के अंगूठों से दोनों कान के छेद बंदकर, तर्जनी से आँखे बंदकर, मध्यमा और अनामिका से नासिका और मुख बंदकर इस षठमुखी मुद्रा से अपनी सामर्थ्यानुसार कुम्भक कर शांत भाव में बैठ जाना चाहिए। फिर शनै–शनै वायु का रेचन करना चाहिए। शनै–शनै वायु धारण करते–करते अभ्यास सिद्ध होकर दाहिने कान में भीतरी शब्द सुनाई पड़ने लगेगा।

योगियों ने योग सर्वोदय में नाद–साधना का एक दूसरा उपाय भी बताया है–"**नाभ्याधारो भवेत् शब्दः तत्र प्राणम् समभ्यसे। स्वयं उत्पद्यते नादो नादतो मुक्तिरन्ततः।।**" अर्थात् समकायशिरोग्रीव होकर निश्चिन्त होकर, नाभि के ऊपर टकटकी बांधकर देखता रहे, श्वास छोटा होकर कुम्भक होगा। प्रतिदिन चार बार यह अभ्यास करने पर कुछ ही दिन में अन्दर से नाद प्रकट होने लगेगा। यह नाद १० प्रकार का बताया गया है–झींगुर

की झनझनाहट जैसा, चींचीं जैसा जिससे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, चिट–चिट जैसा जिससे अंगों में आलस्य आता है, क्षुद्र घंटिका जैसा–जिससे सब अंगों में प्रेम–पीड़ा होती है; शंख जैसा जिससे सिर घूमता है और नशा सा आता है; बीन जैसा इसको सुनकर कपाल के अंदर अमृत गिरता है; ताल का नाद, कण्ठ में आकर अमृत पान होता है। बांसुरी का शब्द सुनने से सभी के मनों का आकर्षण, अन्तर्यामिता और सभी के मन की गति का ज्ञान होने लगता है। दूरदर्शन, दुरश्रवण आदि सिद्धियाँ आने लगती हैं। मृदंग का शब्द सुनने से प्रत्येक वस्तु में से नाद सुनाई पड़ता है। नफीरी के श्रवण से मन सूक्ष्म होकर मन सर्वत्र गमन करने की सामर्थ्य वाला होता है और ध्यान में अन्तर्धान होने की क्षमता हो जाती है। स्वामी चरणदास ने अनहद नाद को अंतिम सीढ़ी बादल के गर्जने की ध्वनि बताई है। यह इसके सुनने से **सोऽहम्** शब्द का अन्तर्नाद प्रकट हो जाता है। इससे वासना क्षय निस्त्रैगुण्यता; पाप–पुण्य से परे होने की क्षमता तथा तेजोमयता आती है।

सोऽहम् नाद को सुनते–सुनते साधक मधुपान करने वाले भौंरे की तरह निश्चल और निस्पन्द समाधिस्थ हो जाता है। यह अवस्था भी योगियों का अंतिम लक्ष्य नहीं है। योगी को इसके आगे की ज्योतिर्मय साधना में पदार्पण करना है। गुरुदेव की सेवा से प्राप्त उनकी कृपा–प्रसादी द्वारा साधक योनि मुद्रा और शाम्भवी मुद्रा अपनी स्थिति परिपक्व कर ले और अनाहद पद्म में स्थित बाण–लिंग शिव के मस्तक पर निर्वात, निष्कम्प दीपशिखा की तरह ज्योति का ध्यान करे। ज्योतिर्मय ब्रह्म में साधक का मन लीन होकर सर्वव्यापक ब्रह्म रूपी विष्णु के परम पद में विलीन हो जाएगा। उसी क्षण वासना नाश मनोलय और तत्व ज्ञान का पूर्ण मनोलय होगा। साधक आत्मतत्व में स्थित होकर सर्वव्याधि विनिर्मुक्त चित और आनन्द का अक्षय भण्डार हो जाएगा। गोरक्ष–संहिता में इसी साधना का संकेत इस श्लोक में किया गया है–

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्मतम् ज्योतिः ज्योतिरन्तर्गतम् मनः।।

आत्म ज्योति का दर्शन ही चित्त–अचित ग्रन्थिका भेदन है। यह आत्म ज्योति दर्शन सिद्ध गुरु की कृपा से सहज साध्य है। आस्थावान साधक स्थिर चित्त से आसन पर बैठकर ब्रह्मरन्ध्र स्थित श्वेत कमल में श्री गुरुदेव का ध्यान करने के बाद उनको प्रणाम करे, उसके बाद नाभि–मण्डल पर दृष्टि स्थिर कर उड्यान बन्ध की साधना करें और अपान वायु को गुदा द्वार से उठाकर नाभि देश में कुम्भक द्वारा धारण करें। नाभिस्थ अग्नि को जय करके नाद का श्रवण आसान होता है। यह अभ्यास तीन बार–प्रातः, मध्याह्न और सायं अपेक्षित है। जो साधक इस मार्ग पर आगे बढ़ना चाहते हैं उनके लिए नाद योग की लय साधना श्री गुरुदेव की कृपा से सिद्धदायक हो। संगीत साधना में भी पूर्ण सिद्धि के लिए हमारे पूर्वाचार्यों ने गुप्त उपदेश किया है। जिसे यथा समय साधकों के हितार्थ प्रकट किया जाएगा।

* * *

अद्भुत कृपा लीला

राजेश कुमार श्रीवास्तव

सन् १९७८ में भाईजी का विवाह संस्कार हुआ। एक दिन उनके हृदय में भावना बनी, क्यों न गुरूदेव से गुरू दीक्षा लेली जाय। सभी लोग लिया करते हैं। अतः हमें भी अवश्य लेनी चाहिए। उचित अवसर प्राप्त होते ही भाई जी ने श्री चरणों में निवेदन किया—

—प्रभुजी ! गुरूदीक्षा लेने की हार्दिक अभिलाषा है। आपकी कृपापूर्ण आज्ञा अपेक्षित है। निज बालक आपके मधुर वचनों को सुनने के लिए आतुर हैं।

—अरे लला; तुम क्या करोगे गुरूदीक्षा का ? तुम तो हमारे संस्कारी बच्चे हो।

—फिर भी गुरूदेव आपका अनुग्रह हुआ तो मंत्र तो मिल ही जायेगा गुरूदीक्षा के बहाने सें

—अच्छा लला ! अभी अत्यधिक व्यस्तता के कारण हम तुम्हारी दीक्षा नहीं कर पायेंगे। तुम ज्योति पर्व (दीपावली) पर हमें ध्यान दिला देना, यह कार्य तभी ठीक रहेगा। किन्तु ज्योति पर्व पर भी, अनेक लोगों के आने के कारण हमें फुरसत नहीं रहेगी। तो फिर ऽऽऽऽऽ

आगे कुछ विचार करते हुये पूज्य गुरूदेव जी बोले—

—अच्छा लला ! फिर तुम ऐसा करना दौज को आश्रम आ जाना, तभी दे देंगे।

फिर जैसे कुछ याद आ गया हो श्री प्रभुजी अचानक बोल उठे—

—तृतीया को दिन क्या पड़ रहा है लला ?

—जी प्रभुजी ! गुरूवार पड़ रहा है।

—देखो ! इसी दिन तुम अपने घर में सत्संग किया करते हो न ?

—जी प्रभुजी।

—(खिलखिलाकर हंसते हुये) लला। तुमने तो कभी हमें बतलाया नहीं लेकिन हमें पता है।

—आप क्या नहीं जानते, प्रभुजी। आप तो घट—घट वासी अन्तर्यामी हैं।

—अच्छा लला ! फिर तुम दौज के बजाय तृतीया को गुरूवार के दिन ही गुरू दीक्षा ले लेना। यही ठीक रहेगा।

—जैसी आज्ञा आपकी। (भाईजी ने गदगद कण्ठ होकर कहा)

गुरू भाई श्री कृष्ण वीर सिंह तौमर जी दौज वाले दिन, जलेसर रोड के नजदीक स्थित, अपनी बहन के घर गये हुये थे। किन्तु गुरू दीक्षा के कार्य में विलम्ब से, कहीं विघ्न न बन जाये, इस भय से वे आश्रम के लिए प्रातः ही साइकिल से निकल पड़े। रास्ते में एक पैडल अपने स्थान से निकल कर जमीन पर गिर पड़ा। बड़ी मुश्किल से एक ही पैर से साइकिल चलाते हुये किसी प्रकार आश्रम तक पहुँच सके। मन सुबह से ही बड़ा प्रफुल्लित था कि आज गुरूदीक्षा हो जायेगी प्रभुजी ने वायदा जो किया है। किन्तु समय अधिक होने से उत्साह निरन्तर ठण्डा पड़ता जा रहा था। श्री सिद्धगुफा धाम पहुँचते—पहुँचते दोपहर हो चुकी थी। श्री प्रभुजी अपने कक्ष

में शयन कर रहे थे। यह जान कर भाई जी को बड़ी निराशा हुई। गुरूदेव की शयनावस्था में विघ्न डालने की हिम्मत कौन जुटा सकता था भला ?

आज भी आना व्यर्थ ही रहा, निराश मन से ऐसा सोचते हुये भाई जी ने सरस्वती स्वरूपा योगिनी उमा जी के चरणों में प्रणाम किया और उन्हें पूरा हाल बताया। वे दयामूर्ति तुरन्त कहने लगी— "तो निराश होने की क्या बात है गुरूदेव जी ने जब वायदा किया है तो तुम्हें अवश्य गुरूदीक्षा देंगे। एक उपाय बताती हूँ। तुम यहीं बैठ कर मेरे साथ शुरू कर दो—गुरूदेव जयजय सत्गुरू जय जय, अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय।"

अभी ताली बजा—बजा कर पाँच मिनट ही संकीर्तन किया होगा कि प्रभुजी ने जोर से आवाज लगाई।

रामाश्रय sss।

भाई श्री रामाश्रय जी गुरू सेवा के दुर्लभ उदाहरण दौड़ते हुये प्रभुजी के चरण—कमलों में पहुँच पाते कि उनसे पहले ही पूज्य बहन जी बड़ी शीघ्रता से श्री गुरूदेव जी के कक्ष में प्रविष्ट हो गईं। कहने लगीं—"देखिए आपने गुरू दीक्षा के लिए वायदा कर दिया था, वो बेचारा एक पैर से साइकिल चला कर आया है। रास्ते में उसकी साइकिल ही खराब हो गई अब वो भी क्या करे। सुबह से कुछ भी नहीं खाया है उसने। उसकी पत्नी पहले से ही आयी हुई है वह भी भूखी बैठी है।

पूज्य गुरूदेव भगवान बड़े प्रसन्न मन होकर कहने लगे—

—अच्छा ! वह रूपसिंह का लड़का है क्या ?

—हाँ वही है, महाराज जी।

गुरूदेव जी ने तुरन्त रामाश्रय जी को गुफा में दीक्षा हेतु तैयारी करने की आज्ञा दी और बड़े स्नेह—दुलार के साथ कहने लगे—

—अब हमने तो भोजन कर लिया, नियमानुसार तो हमें भी भोजन नहीं करना चाहिए था किन्तु कोई बात नहीं, हमारे लल्ला ने तो अभी तक कुछ नहीं खाया है, प्रभु जी सब जानते हैं।

इस प्रकार बड़े आनन्द—विनोद के माहौल में प्रभु दरबार श्री सिद्ध गुफा में भाई जी की गुरूदीक्षा सपत्नीक सम्पन्न हुई। मंत्र देने के बाद सदा स्मरणीय श्री गुरूदेव भगवान बोले—

लल्ला ! अब दोनों नित्य ध्यान भजन, जिस प्रकार हमने बतलाया है बिल्कुल वैसे ही किया करना। श्री प्रभुजी (दादा गुरूदेव जी) का सदा चिन्तन करते रहना।

फिर बड़े प्यार से भाई जी की पीठ पर थपकी लगाते हुए कहने लगे—

—लल्ला ! तुम्हें तो अपना मंत्र याद रहेगा यदि मुनियाँ (धर्म पत्नी) मंत्र भूल जाय तो इसे याद दिला देना। अपना मंत्र और किसी को मत बतलाना।

"जो प्रभुजी जैसी आज्ञा आपकी।" ऐसा कहते हुए भाई जी ने सपत्नीक गुरूदेव के चरणों में प्रणाम करके परम शक्तिपात प्राप्त किया।

विवाह के दो वर्ष उपरान्त, भाई जी के साथ एक बड़ी विचित्र, आश्चर्य में डालने वाली और करूणा

निधान दादा गुरूदेव व भक्तवत्सल श्री गुरूदेव के अभय चरणों में अनुराग बढ़ाने वाली घटना घटित हुई। तरुणावस्था में प्रवेश पा रही, गाँव की ही एक रूपवती किशोरी की अचानक बहुत तबियत बिगड़ गयी। स्वास्थ्य में निरन्तर गिरावट और मानसिकता में असहनीय परिवर्तन देखकर उसके परिवारीजन बड़े दुःखी थे। किशोरी के भविष्य को लेकर वे सभी बड़े चिंतित थे। उसके माता–पिता दौड़े–दौड़े डा. श्री कृष्णवीर सिंह तौमर जी के निवास पर पहुँचे और किशोरी को देख लेने का निवेदन करने लगे। डा. साहब तुरन्त अपना कर्तव्य समझते हुये चल पड़ें। वहाँ पहुँच कर भाई जी ने उस किशोरी की जो दशा देखी तो दंग रह गये। उसकी समस्त देह जैसे एक असाधारण तापमान के अन्तर्गत पहुँचकर, जल कर राख हो जाने वाली हो। चेहरे पर इतना आवेश और तनाव था कि लगता था मानो क्रोध की अग्नि पाकर, ज्वर अपनी चरम सीमा का उल्लंघन करने के लिए आतुर हो। मरीज की स्थिति को भलीभांति समझकर उन्होंने एक टेबलेट देते हुए, उस किशोरी से तुरन्त निगल जाने के लिए कहा। क्रोधाग्नि में सुलगती किशोरी डाक्टर साहब के हाथ में टेबलेट देखकर ऐसे बरस पड़ी जैसे तपते तेल की कड़ाई में किसी ने जल के छींटे डाल दिये हों।

अरे ओ डाक्टर ! क्या करेगा तू मुझे ये गोली खिलाकर। अपनी खैर चाहता है तो भाग जा यहाँ से नहीं मरा दीखेगा। सोच ले क्या प्यारा है तुझे — प्राण अथवा मौत। किशोरी के मानसिक व्यवहार में अशिष्टता के कल्पनातीत लक्षण देखकर डा. श्री कृष्णवीर सिंह जी को कुछ सन्देह हुआ। 'सच' समझने में उन्हें देर नहीं लगी।

प्रत्युत्तर में, दूसरी तरफ से डाक्टर साहब ने भी ऊँची आवाज में कहा—

—सच–सच बता, कौन है तू ?

—अच्छा ये भी जानेगा तो सुनले, 'खवीश' हूँ मैं। बहुत खतरनाक हूँ।

—तो तुम इस लड़की को क्यों व्यर्थ में परेशान करते हो ?

—इसी से पूछना, यह पहले तो मुझे खूब पूजती थी लेकिन अब मुझसे पीछा छुड़ाना चाहती है। दूर भागती है, मुझसे।

—तुम ऐसा कैसे सोचते हो कि यह तुम से दूर भागती है।

—बतलाता हूँ सबर रख डाक्टर ! मैं नहर के पास रहता हूँ। ये वहीं से होकर गुजरती है लेकिन नहर में मेरे नाम के पैसे नहीं चढ़ाती है।

—ठीक तो किया उसने पैसे नहर में चढ़ाना क्या जरूरी है तुम्हारे लिए ? तुम प्रेतात्माओं को, अशरीरी शैतानों को धन–दौलत से क्या लाभ होगा ?

डा. श्री कृष्ण वीर तौमर जी की, अग्नि में घी डालने जैसी बातों को सुनकर किशोरी का चेहरा पुनः क्रोध से लाल होने लगा। होंठ फड़कने लगे। किशोरी पर सवार वह खवीश, चीखने लगा—

—चुप रह, अरे ओ डाक्टर के बच्चे बहुत बोलता है तू। तू भी मेरा अपमान करने के लिए आया है यहाँ। सुन ! इस लड़की को हमारे लिए नहर में पैसे चढ़ाने ही होंगे। यह हमारा आदेश है।

किशोरी को, खवीश के रूप में कोई शैतान आत्मा सता रही है यह उसके घर वालों को अब तक पता ही नहीं था उस दिन डा. साहब के पहुँचने पर ही यह भेद खुल सका।

डा. साहब को अपने श्री प्रभु जी पर पूरा भरोसा था। आज भी गुरुदेव के नाम की मस्ती उनके तन–मन में हर समय समाई रहती है। नित्य आनन्द स्वरूप परम् वन्दनीय श्री गुरूदेव भगवान की परमशक्ति का स्मरण करते हुऐ, दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का चिन्तन करते हुए, डा. साहब ने उस दुष्टात्मा को क्रोध में भर कर लताड़ लगाई।

–अब तू भी अपनी खैर चाहता हो तो इस लड़की का पीछा छोड़ दे। तू इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

–डा. साहब की बातें सुनकर वह शैतान आत्मा बड़े जोर का ठहाका लगाकर हंसी। उपहास करते हुए बोली–

–अरे क्यों मरने के लिए बेचैन हो रहा है डाक्टर। तुझे हमारी ताकत का ज्ञान नहीं है तो थोड़ा चुप नहीं रह सकता।

डा. श्री तौमर जी बोले–

–तुझे नहीं मालुम हमारे ऊपर किनकी कृपा छाया है। तेरे जैसों को मैं अच्छी तरह ठीक करना जानता हूँ। मैं कहता हूँ इस लड़की को छोड़ दे, तेरे लिए यही अच्छा रहेगा।

खबीश इतना सुनकर गुस्से से पागल हो उठा। वह एकदम से डा. साहब की ओर बड़ी फुर्ती के साथ झपटा. किन्तु फिर उतनी ही फुर्ती से १०–१५ कदम पीछे हट गया। गुरू भाई श्री तौमर जी उस शैतान आत्मा से बोले–

–क्यों ? अब क्यों पीछे की ओर भागते हो। देखो मैंने कहा था न कि तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

भूत डरा सा, धीमी आवाज में दांतों को भीचता हुआ बोला–

–अरे ! तुझे तो मैं अभी उछाल–उछाल कर मारता। लेकिन क्या करूँ ? तेरे पीछे जो बाबा त्रिशूल और चीमटा लेकर खड़े हैं इन से भारी डर लग रहा है मुझे।

डा. साहब ने झट से पीछे की ओर देखा लेकिन वहाँ कोई दिखलाई नहीं पड़ा तभी–

–जाता हूँ महाराज, अभी जाता हूँ मुझे छोड़ दो। इस प्रकार गिड़गिड़ाती हुई किशोरी धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी। अब कोई खतरा नहीं था। अकारण दयालु महाप्रभुजी की करूणा ने उसे उक्त प्रेतात्मा के द्वारा मिलने वाले दारूण कष्टों से हमेशा के लिए मुक्त कर दिया था। सभी घर वाले किशोरी को घेर कर खड़े हो गये पूछने लगे–

–ये सब क्या हो गया हमारी बच्ची के साथ ?

–डा. साहब बड़े धैर्ययुक्त शब्दों में बोले–

–अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। जो कुछ हुआ है सब अच्छा ही हुआ है यह कहते–कहते प्रभुप्रेम में सजल हुये उनके नेत्र, दृढ़ गुरूभक्ति श्रद्धा–विश्वास के साथ–साथ गुरू आज्ञा पालन एवं पुरूषार्थ के रहते किसी का भी अनिष्ट नहीं हो सकता है– इस बात का स्पष्ट संकेत दे रहे थे। वह स्वयं तो सुरक्षित रहता ही है, दूसरों की भी सुरक्षा कराने में सक्षम हो जाता है। ऐसी अनेकों श्री प्रभुजी की अद्भुत कृपा लीलायें प्रकाश में आया करतीं है।

***

शरीर-क्षेत्र

(पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश)

हमारे शरीर की भी महिमा विचित्र है। कितनी शक्तियाँ इसके भीतर निहित है, इसका हमें पूर्णतया बोध नहीं होता और न उन शक्तियों को प्रकट करने पर हमारा ध्यान ही होता है। लोग तो ऐश–आराम में अपना जीवन व्यतीत करना चाहते है, अपने अंदर की छिपी शक्तियों को विकसित करने का साधन करना नहीं चाहते। हमारा कैसा और किसके साथ संसर्ग होता है, इसी पर हमारी शक्तियों का विकास निर्भर होता है, गुण और दोष एक दूसरे के संसर्ग से होते है **'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।'** यद्यपि इस धरती में विभिन्न प्रकार के बीज छिपे हुए रहते है, फिर भी जमते वे ही है, जिन्हें हम बोते है। ठीक यही दशा हमारे शरीर की भी है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इस शरीर को 'क्षेत्र' कहा है। क्षेत्र को भाषा में 'खेत' कहते हैं। खेत का मतलब यह है कि जो बीज उसमें हम बोयेंगे, वही जमेगा। और फल पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो, इसके लिये जैसा खेत बनाया जायेगा, जैसी खाद दी जायेगी, बीज भी वैसा ही पुष्ट और प्रचुर मात्रा में फल उत्पन्न करेगा। यदि खेत अच्छा नहीं बनाया जायेगा और उसमें उचित खाद आदि न दी जायेगी तो बीज की वृद्धि न होगी। ठीक वही दशा हमारे शरीर की भी है। इस शरीर के साथ जैसा संसर्ग बनाया जायेगा, उसका प्रतिफल भी वैसा ही होगा। इसलिये इस बात को सदा स्मरण रखना चाहिये कि जिन–जिन लोगों से या जिस प्रकार की विचार–धारा से हम प्रभावित होंगे, तदनुकूल ही हमारी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होगा। जमीन में कोई व्यक्ति घास नहीं बोता; किंतु उचित बोआई और खाद के अभाव में जैसे घास–कटि आदि आप से आप उत्पन्न हो जाते हैं, वही दशा हमारे शरीर की भी समझनी चाहिये।

अच्छे बीज और अच्छे फल के लिये जिस प्रकार अच्छी जोताई और खाद की आवश्यकता है, उसी प्रकार इस शरीर द्वारा उचित गुणों के विकास और प्रसार के लिये इसमें अच्छा संसर्ग एवं अच्छी साधनाओं की व्यवस्था होनी चाहिये। इन्हीं सब साधनाओं या व्यवस्थाओं को जो करते हैं, वे 'साधक' कहलाते हैं। साधना क्या है ? वह एक तरह की ताले की कुंजी है। मान लीजिये, किसी घर में ताला लगा है। जब तक ताला खोलकर हम अंदर प्रवेश नहीं करेंगे, तब तक उस घर में क्या रक्खा है, हम नहीं जान सकते। घर में प्रवेश करने के लिये जैसे ताला खोलना आवश्यक है, वैसे ही इस शरीर के द्वारा क्या–क्या किया जा सकता है, उसको जानने के लिये अर्थात् शरीर रूपी ताले को खोलने के लिये साधना रूपी कुंजी की आवश्यकता है। साधना द्वारा ही हम इस शरीर की अन्तर्निहित शक्तियों का प्रादुर्भाव कर सकते है और तब हम समझ सकते हैं कि परमात्माने अपनी कृपा द्वारा इस मानव शरीर में हमें क्या–क्या प्रदान करके रख छोड़ा है और उसके द्वारा हम विश्वसृष्टि में क्या नहीं कर सकते है।

जैसे खेत के विषय में पूरी जानकारी वाले व्यक्ति को हम 'कृषक' या 'खेतिहर' कहते है, वैसे ही इस शरीर रूपी क्षेत्र के पूरे जानकार को भगवान् कृष्ण ने 'क्षेत्रज्ञ' की संज्ञा दी है। इस शरीर रूपी क्षेत्र की महिमा की पूरी जानकारी ही यथार्थ में ज्ञान है–

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ (गीता १३/१–२)

भाव इसका यह है कि यह शरीर 'क्षेत्र' है और इसकी विशेषताओं को समझने वाले को 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है और यह क्षेत्रज्ञ यानी जीवात्मा भी मेरा ही अंश है और क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान, अर्थात् प्रकृति और पुरुष को जानना तथा समझना ही यथार्थ ज्ञान है—ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण का मत है। इस शरीर के द्वारा प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध को समझ लेना कोई आसान काम नहीं है। यही सबसे कठिन काम है। प्रथम यही विचार करना है कि यह जो शरीर है, वह नाशवान् है और इसके अंदर नित्य निवास करने वाला आत्मा अजर और अमर है। इस आत्मा का न जन्म होता है और न मृत्यु, अर्थात उसका कभी नाश भी नहीं होता। यह एक रहस्य है कि इस नित्य रहने वाले आत्मा को यह नाशवान् शरीर क्यों कर प्राप्त हुआ।

यही तो अन्तर है, जिसके कारण हम मनुष्य हैं और वह है परमात्मा। यदि ऐसा अन्तर न होता तो मनुष्य भी परमात्मा ही कहलाता है। मनुष्य में जो जीवात्मा है, वह नित्य है और परमात्मा भी नित्य ही है। इसलिये हममें और परमात्मा में अन्तर कैसा ? इस गूढ़ तत्व के समझने के लिये घड़े और आकाश की उपमा दी जाती है। बाहर का जो आकाश है, वह बृहदाकार आकाश है और घड़े के अंदर जो आकाश का भाग है, वह बृहदाकार आकाश से सम्बन्धित है। यदि घड़ा फोड़ दिया जाय तो उसमें का आकाश जिस प्रकार बृहदाकार आकाश से जा मिलेगा, उसी प्रकार का सम्बन्ध इस शरीर के आत्मा और परमात्मा के साथ है। परमात्मा बृहदाकार आकाश के सदृश है उसी का अंश यह जीवात्मा घड़े रूप शरीर में समाया हुआ है। शरीर न छूटता है और न परमात्मा से मिलन होता है। शरीर छूट जाय यानी जन्म मरण से छुट्टी हो जाय तो हमारी मुक्ति ही हो जाय, अर्थात् हमारा यथार्थ सम्बन्ध उस परमात्मा से ही हो जाय, जो एक महान् कठिन काम है।

भगवान ने अपनी लीला से इस जीवात्मा को ऐसा बाँध दिया है कि उससे निकलना इस जीवात्मा के लिये अत्यन्त दुष्कर हो गया है। इसी लीला को कोई 'माया' या कोई–कोई 'प्रकृति' के नाम से पुकारते हैं। परमात्मा ने हमारे चारों ओर माया का ऐसा आवरण डाल रखा है कि उससे निकलकर परमात्मा के निकट तक पहुँचना इस जीवात्मा के लिये असम्भव सा हो गया है। परमात्मा क्या है, माया या प्रकृति क्या है, जीवात्मा क्या है—इसकी यथार्थता नीचे लिखी घटना से आप समझ सकेंगे—

एक बार की बात है, विदेह राजा जनकजी से मिलने के लिये श्री शुकदेव मुनि उनके यहाँ पधारे। जनक जी तो राजा ही ठहरे, उनका विशाल राजभवन, उसके आगे सशस्त्र पहरेदार, फिर भीतर भी पहरेदार—इस प्रकार पहरेदारों से राजमहल सुरक्षित था। जब श्री शुकदेवजी राजमहल के फाटक पर आये, तब नियमानुसार पहरेदारों ने उनका परिचय पूछा और उन्हें वहीं फाटकपर रोक दिया। इस प्रकार श्री शुकदेवजी को फाटक पर रुके–रुके सात दिन और सात रातें व्यतीत हो गयीं, न तो जनक जी ने उन्हें बुलाया और न शुकदेवजी वहाँ से झुँझलाकर वापस गये। जब इस प्रकार श्री शुकदेवजी के धैर्य, शील एवं स्वभाव की पूरी–पूरी परीक्षा हो गयी, तब आठवें

दिन जनकजी ने श्री शुकदेवजी को राजभवन में प्रवेश करने की आज्ञा अपने द्वारपालों द्वारा भेज दी। इस प्रकार आज्ञा मिलने पर श्रीशुकदवेजी ने महल के अंदर प्रवेश किया। महल के अंदर द्वार से लेकर जनक निवास तक अनेकानेक आकर्षक वस्तुओं के प्रदर्शन का आयोजन था। यदि श्रीशुकदेवजी चाहते तो किसी भी आकर्षक वस्तु को रास्ते में देख लेते और फिर जनकजी की ओर आगे बढ़ते तो उसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं थी, किंतु श्री शुकदेवजी ने न तो कोई आकांक्षा की और न उनके मन में किसी वस्तु की कोई लालसा ही थी। वे तो रास्ते की सारी आकर्षक वस्तुओं की उपेक्षा करते हुए सीधे जनक जी के स्थान को चलते गये और जनकजी के पास पहुँचने पर उन्होंने उनका बहुत सम्मान किया। श्रीशुकदेवजी ने राजा जनक से कुछ प्रश्न किये और उनसे कुछ सीखना चाहा तो राजा जनकने कहा कि 'आपके लिये अब क्या सीखना और जानना बाकी रह गया है। जब मेरे समीप तक पहुँचने में रास्ते की कोई भी आकर्षक वस्तु आपको मोहित और प्रभावित नहीं कर सकी तब आपके लिये अब कौन सा योग शेष रह गया है।' उन्होंने पुनः सम्मान के साथ श्री शुकदेवजी को विदा कर दिया।

सारांश यह कि परमात्मा तक पहुँचने के लिये इस जीवात्मा को अनेकानेक प्रलोभनों को त्यागना पड़ता है। साधक के लिये माया के दुस्तर जाल को काटना आवश्यक है। तभी यह जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होता है। बिरले ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जो इस माया जाल से अपने को बचा सकें। ऐसा तो केवल योगियों के लिये ही सम्भव है, जिन्हें ज्ञान चक्षु प्राप्त हो चुके हैं।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ (गीता १३ / ३४)

'इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद और प्रकृति अर्थात् माया से छूटने के उपाय को जो पुरुष ज्ञान–नेत्रों द्वारा तत्व से जानते और समझते हैं, वे ही महात्मा योगी उस परब्रह्म परं आत्मा को प्राप्त होते हैं।' परमात्मा की प्राप्ति के लिये बहुत त्याग और तपस्या की आवश्यकता है, जो केवल इस मानव शरीर से ही सम्भव है। अतएव इसकी महत्ता को समझते हुए मानव–शरीर की सुरक्षा पर भी हमें विशेष ध्यान देना चाहिये। अपने इस शरीर को आमोद–प्रमोद और विलासिता में नष्ट नहीं करना चाहिये। परमात्माने बड़ी कृपा करके ही हमें यह शरीर दिया है और उसका उद्देश्य क्या है, इस पर हमें विचारते रहना चाहिये। इसी बात की चेतावनी संत तुलसीदास ने अपने मानस–रामायण में दी है–

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक संवारा॥ (७/४२/४)

अतएव हर एक व्यक्ति को अपने शरीर की उपयोगिता और महत्ता को समझते हुए इसमें की निहित शक्तियों को अच्छे संसर्ग द्वारा विकसित करना चाहिये, ताकि यह जीवात्मा माया के आवरण को हटाकर भगवान् की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

* * *

सेवा–पूजा

प्रत्येक मनुष्य को, प्रत्येक स्त्री को–हर एक जीव को भगवत्–स्वरूप समझो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते; तुम केवल सेवा मात्र कर सकते हो; प्रभु की संतानों की सेवा करो, साक्षात् प्रभु की ही सेवा करो–जब कभी तुम्हें अवसर मिले। यदि प्रभु की इच्छा से तुम उनकी किसी संतान की सेवा कर सको तो सचमुच तुम धन्य हो; अपने–आपको बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो कि वह अवसर तुम्हें दिया गया–दूसरे को नहीं। उसे पूजा की ही दृष्टि से देखो। गरीब और दु:खी लोग तो हमारी ही मुक्ति के लिये है, ताकि रोगी, पागल, कोढ़ी और पापी के रूप में अपने सामने आने वाले प्रभु की हम सेवा कर सकें।

* * * *

जाओ, जाओ, तुम सब लोग वहाँ जाओ, जहाँ प्लेग फैला हो, जहाँ दुर्भिक्ष काले बादल की भाँति छा गया हो, जहाँ लोग दु:ख–कष्ट के भार से पीड़ित हों, और जाकर उनका दुख हल्का करो। अधिक से–अधिक क्या होगा ? यही न कि इस प्रयत्न में तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी ? पर उससे क्या ? तुम्हारे समान कितने ही लोग कीड़ों की भाँति प्रतिदिन जन्म ले रहे हैं और मरते जा रहे हैं। इससे इस बड़ी दुनिया का भला, कौन–सा टोटा हो जाता है। तुम्हें मरना तो होगा ही, तो फिर एक महान् आदर्श लेकर क्यों न मरो ? जीवन में एक महान् आदर्श लेकर मर जाना कहीं बेहतर है।

* * * *

शक्ति और अन्य आवश्यक बातें अपने–आप ही आ जायेंगी। अपने को काम में लगा दो; देखोगे, तुममें इतनी शक्ति आने लगेगी कि उसको सहन करना कठिन प्रतीत होने लगेगा। दूसरों के लिये किया गया तनिक–सा भी कार्य अन्त:स्थ शक्ति को प्रबुद्ध कर देता है। दूसरों के प्रति थोड़ी–सी भलाई का विचार भी क्रमश: हृदय में सिंह का बल संचारित कर देता है।

* * * *

क्या तुम सोचते हो कि तुम एक चींटी तक को अपनी सहायता से बचा सकते हो ? यह महान् अधार्मिक विचार है। ऐसा सोचना अधर्म है। दुनिया को तुम्हारी कतई जरूरत नहीं। धन्य हैं हम जो हमें प्रभु के लिये कार्य करने का सौभाग्य मिला। इस 'सहायता' शब्द को अपने मन से बिल्कुल निकाल दो। तुम सहायता नहीं कर सकते। तुम केवल पूजा–सेवा ही कर सकते हो। अतएव सारे संसार के प्रति इस प्रकार का श्रद्धापूर्ण भाव लेकर खड़े होओ। तभी पूर्ण अनासक्ति आयेगी।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय, झाँसी

का

❀ वार्षिकोत्सव–योग सम्मेलन ❀

एवम्

योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का

जन्मोत्सव समारोह

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा स्थापित एवं उनके ही आशीर्वाद से उत्तरोत्तर प्रगति पर अनवरत अग्रसित प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय, झाँसी द्वारा आयोजित २३वाँ बुन्देलखण्ड संगीत सम्मेलन / प्रतियोगिताएँ / योग सम्मेलन एवं सद्गुरुदेव भगवान का पावन जन्मोत्सव समारोह निम्नलिखित तिथियों में मनाया जायेगा ।

॥ कार्यक्रम ॥

दि० 17, 18, 19, 20 अक्टूबर 1999	प्रातः 6-30 बजे से 11-00 बजे तक	गीता पाठ, श्री प्रभुजी की आरती पूजन, संकीर्तन एवं योग सिद्धान्तों पर प्रवचन ।
	सायं 6-30 बजे से रात्रि 9-30 बजे तक	संकीर्तन, आरती, पूजन एवं योग सिद्धान्तों पर प्रवचन ।
दि० 17, 18 अक्टू० 99	प्रातः 11-00 बजे से सायं 6-00 बजे तक	संगीत प्रतियोगिताएँ ।
दि० 18 अक्टूबर 1999	सायं 6-00 बजे	पारितोषिक वितरण :
दि० 19 अक्टूबर 1999	प्रातः 9-00 बजे से	परम पूज्य, परम करुणानिकेतन सद्गुरुदेव भगवान का जन्मोत्सव अभिषेक समारोह ।
दि० 19, 20 अक्टू० 99	मध्याह्न 2-30 बजे से सायं 6-00 बजे तक	संगीत सम्मेलन ।

सभी आदरणीय भाई-बहिनों, जिज्ञासुओं एवं संगीत प्रेमियों से विनम्र निवेदन है कि सम्पूर्ण आयोजन में अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर कार्यक्रम को भव्यता प्रदान करें ।

निवेदक :
श्री प्रभुजी का ही एक दीन बालक
कृष्णकान्त शा

स्थान– हीरा भवन
महारानी लक्ष्मीबाई व्यायाम मन्दिर, झाँसी

卐 श्री रामलाल प्रभवे नमः 卐

卐 श्री चन्द्रमोहन गुरवे नमः 卐

श्री गुरु चन्द्रमोहन जी महाराज योग मन्दिर (रजि0)

अलूपुर (पानीपत) हरियाणा—132 113

जन्मोत्सव 1999

सभी भाई बहनों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि हर वर्ष की भांति आनन्दकन्द सद्गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का पावन जन्मदिवस उनकी जन्मस्थली, ग्राम अलूपुर (जिला पानीपत) में बुधवार, दिनांक 20 अक्तूबर, 1999 को उनकी मूर्ति पर पंचामृत चढ़ाकर मनाया जायेगा। उत्सव तीन दिन यानि 18, 19 तथा 20 अक्तूबर, 1999 दिन सोमवार, मंगलवार तथा बुधवार का होगा। अत: निवेदन है कि सभी भाई बहन ग्राम अलूपुर पहुँच कर उत्सव का आनन्द लें तथा शोभा बढ़ाएं। इस शुभ अवसर पर दूर-दूर से आने वाली कीर्तन मण्डलियों के भजनों तथा विद्वानों के योग सिद्धांतों पर प्रवचनों का कार्यक्रम रहेगा तथा 20-10-99 को पूजन के पश्चात् भण्डारा होगा। यह भी निवेदन है कि आस-पास के अन्य भाई-बहनों, जिनके पास पत्र न पहुँच पाया हो, को भी सूचित करने की कृपा करें।

सबको जय गुरूदेव !

निवेदक :

समस्त कार्यकारिणी एवं प्रबन्ध समिति

अलूपुर धाम — पहुँच मार्ग

दिल्ली से पानीपत : 90 कि०मी० बस एवं रेल सेवा (कुरूक्षेत्र की ओर)

पानीपत से मतलोडा : 15 कि०मी० बस एवं रेल सेवा (जीन्द की ओर)

मतलोडा से अलूपुर : 9 कि०मी० बस, रेहड़ा एवं तिपहिया वाहन द्वारा

नोट : आवश्यकता के अनुसार पानीपत, मतलोडा व जीन्द में निम्नलिखित पतों पर सम्पर्क करें—

(1) लाला ताराचन्द प्रधान गऊशाला मण्डी, पानीपत। ✆ 01742-66368, 67427

(2) श्री राजेश कुमार पुत्र लाला मोतीराम, म० नं० 62, न्यू जगन नाथ विहार, पानीपत। ✆ 01742-36667

(3) श्री शामलाल पवन कुमार, गर्ग राइस मिल्ज, अलूपुर रोड, मतलोडा। ✆ 01742-84343, 84222

(4) चौधरी रणधीर सिंह, ग्राम व डाकखाना अलूपुर। ✆ 01742-84307

(5) श्री जगदीश गर्ग, हाऊस नं० 41, हाऊसिंग बोर्ड, जीन्द ✆ 01681-55533

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008 अक्टूबर 1999

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री ----------

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरूषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमना· शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।।

मुण्डकोपनिषद् २।१।२

अर्थात् : निश्चय ही दिव्य पूर्ण पुरुष आकाररहित समस्त जगत के बाहर और भीतर भी व्याप्त जन्मादि विकारों से अतीत प्राण रहित, मन रहित होने के कारण सर्वथा विशुद्ध है तथा इसीलिए अविनाशी जीवात्मा से अत्यन्त श्रेष्ठ है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326